संपादन:
राजेश खिंदरी
दीपक वर्मा
माधव केलकर
रश्मि पालीवाल
सी. एन. सुब्रह्मण्यम
हृदयकांत दीवान

वितरण:
महेश बसेड़िया

सहयोग:
गजेन्द्र सिंह राठौर
रामभरोस यादव
अनिल पटेल
बृजेश सिंह

संदर्भ
शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका
अंक-30, नवंबर 1999-मार्च 2000

संपादन एवं वितरण:
एकलव्य, कोठी बाज़ार
होशंगाबाद – 461 001
फोन: 07574 – 53518
ई-मेल: cklavyamp@vsnl. com

वार्षिक सदस्यता (6 अंक) : 50 रुपए
(ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं)

मुखपृष्ठ: किसी बहती हुई जलधारा को देखकर बिलकुल भी ख्याल नहीं आता कि एक नदी का जाल कितना विस्तृत और घना होता है। उत्तरी अमेरिका की इस नदी की उपग्रह द्वारा खींची गई यह तस्वीर पानी के बहने के जाल को बखूबी प्रदर्शित करती है। ये जलधाराएं कैसे एक दूसरे के पानी को खींच लेती हैं इसके बारे में पढ़िए इस अंक में।

पिछला आवरण: बहुत से जीव जंतुओं, विशेष तौर पर कई सारे कीटों, में शिकारी से अपने आप को बचाने के लिए विभिन्न तरीके होते हैं। इनमें से एक तरीका है – अपने आप को आसपास के वातावरण में गुम कर लेना। ऐसी ही एक इल्ली का फोटो जो पत्ते पर बैठकर अपने आप को इस तरह घुमा लेती है कि उसके शरीर की धारियां पत्ते की मध्य शिरा और अन्य शिराओं के जाल की सीध में आ जाएं।

इस अंक में निम्न किताबों से चित्र लिए गए हैं: ***साइंस इन हिस्ट्री: खंड एक***, *जे. डी. बरनाल, प्रकाशक: पेंगुइन बुक्स।* ***एडवांस बायोलॉजी एंड एप्लिकेशन्स:*** *सी. जे. क्लेग़, डी. जी. मेक-कीन, प्रकाशक: जॉन मुर्रे, लंदन।* ***बायोलॉजिकल साइंसेज़:*** *विलियम टी. कीटन, प्रकाशक: डब्लू. डब्लू. नॉरटन एंड कंपनी, न्यू यॉर्क।* ***बायोलॉजी ऑफ प्लांट:*** *पीटर एच. रावेन एंड रे एफ. एवर्ट, प्रकाशक: वर्थ पब्लिशर्स, न्यू यॉर्क।* ***फिज़िकल जियोलॉजी:*** *जुडसन, कॉफमैन, लीट, प्रकाशक: प्रेंटिस हॉल, न्यू जर्सी।* ***होम्स प्रिंसिपल्स ऑफ फिज़िकल जियोलॉजी:*** *संपादनकर्ता डफ, प्रकाशक: चैपमैन एंड हॉल, लंदन।* ***फ्रंटियर्स ऑफ द इंडस सिविलाइज़ेशन:*** *संपादन बी. बी. लाल एवं एस. एस. गुप्ता, प्रकाशक: बुक्स एंड बुक्स।* ***हड़प्पन सिविलाइज़ेशन:*** *जॉर्ज एल. पोसेहल, प्रकाशक: ऑक्सफोर्ड एंड आई. बी. एच. पब्लिशिंग कंपनी।* ***स्टोन एज टूल्स:*** *एच. डी. सांकलिया, पुणे।*

मानव संसाधन विकास मंत्रालय की एक परियोजना के तहत प्रकाशित
संदर्भ में छपे लेखों में व्यक्त मतों से मानव संसाधन विकास मंत्रालय का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

सम्पादकीय

पिछले कुछ महीनों से संदर्भ आपके पास आंशिक नियमितता से पहुंच रही होगी। आंशिक इसलिए क्योंकि हम हर अंक एकदम समय पर तो नहीं निकाल पाए लेकिन फिर भी पिछले नौ महीनों में यह चौथा अंक है।

इसके बावजूद आपको यह देखकर ज़रूर हैरानी होगी कि इस बार भी अंक की समयावधि पांच महीने है। इस बार वजह संदर्भ की पहुंच से जुड़ी है। पिछले चार सालों में संदर्भ की सदस्य संख्या बढ़ती हुई आज लगभग ढाई हज़ार तक पहुंची है। यह इसलिए भी संभव हो पाया क्योंकि आप में से कईयों ने खुद तो सदस्यता ली ही, परन्तु साथ ही अपने बहुत से परिचितों को भी संदर्भ से जोड़ा, अपने-अपने इलाकों में सदस्यता अभियान चलाए, और भी कई तरह से अपना सहयोग हमें दिया।

हमें लगता है कि अब आगे गुणात्मक वृद्धि तभी संभव है अगर हम संदर्भ को खुले बाज़ार में बुक स्टॉल्स पर उपलब्ध करवा पाएं। उसके लिए नितांत ज़रूरी है कि चालू महीनों का संदर्भ स्टॉल पर पहुंचे, अन्यथा बहुत से लोग केवल इसलिए पत्रिका को उठाकर भी नहीं पलटते क्योंकि वह पुरानी हो चुकी है। चाहे संदर्भ की सामग्री में पुराना होने जैसा कुछ भी नहीं है फिर भी इस मानसिकता को देखते हुए हमें ज़रूरी लगा कि अब से यह प्रयास करें कि दो महीने की अवधि की शुरुआत में ही संदर्भ बुक स्टॉल्स पर पहुंच पाए, और आप तक भी।

इस अभियान में आपकी शिरकत की भी ज़रूरत है। आपके परिचित स्टॉल या आसपास के किसी स्टॉल से बातचीत करके पता करें कि क्या उनकी संदर्भ रखने में रुचि होगी और हमें खबर करें। इस विषय में और जानकारी के लिए हमें होशंगाबाद या भोपाल के पते पर लिखें।

यहां पर एक बात ज़रूर दोहरा दें कि संदर्भ के अंकों पर समयावधि जो भी लिखी हो, अगर आप संदर्भ के वार्षिक सदस्य हैं तो आपको 6 अंक यानी लगभग छह सौ पन्ने की सामग्री ज़रूर मिलेगी।

आशा है आपका सहयोग हमें सदैव की तरह मिलता रहेगा। संदर्भ को लेकर आपकी अगर कोई भी टिप्पणी अथवा सुझाव हो तो हमें बेहिचक लिखिएगा।

– संपादक मंडल

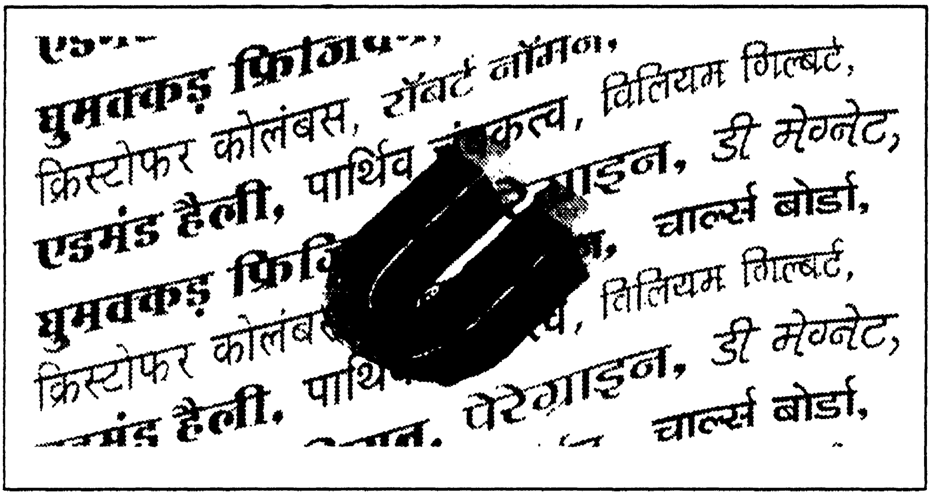

चुंबक इतिहास के आइने में 19

धरती पर किसी भी जगह पर चुंबकीय क्षेत्र के बारे में कुछ भी कह पाने के लिए तीन जानकारियों की ज़रूरत होती है – वहां पर रखी चुंबकीय सुई भौगोलिक उत्तर से कितना कोण बनाती है, वह क्षैतिज से कितना कोण बना रही है और वहां पर चुंबकीय बल क्षेत्र का मान क्या है। परन्तु साथ ही यह भी ख्याल रखना होगा कि पृथ्वी पर हर जगह पर, समय के साथ ये तीनों मात्राएं लगातार बदलती रहती हैं। इस सब को खोजने में कोलम्बस, एडमंड हैली आदि बहुतेरों का हाथ रहा है जिन्हें हम किन्हीं और ही कारणों से जानते हैं।

प्राचीन भारत में रेखागणित 71

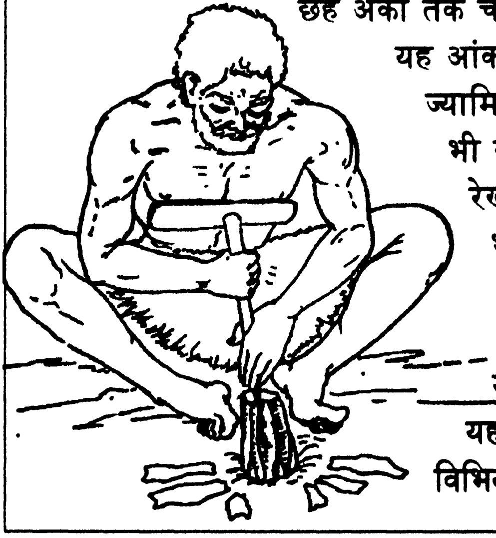

छह अंकों तक चलने वाले इस आलेख की पहली कड़ी में यह आंकने का प्रयास किया गया है कि आखिर ज्यामिति की शुरुआत कब मानें? इस सवाल पर भी गौर किया गया है कि यूक्लिडीयन रेखागणित के अलावा क्या प्राचीन मिस्र, भारत और बेबीलोन के पास भी अपने किस्म का कोई रेखागणित था? रेखागणित के विकास में कारीगरों-शिल्पियों का क्या योगदान रहा है?

यह शृंखला प्राचीन भारत में रेखागणित के विभिन्न पहलुओं की विस्तृत जांच-पड़ताल करेगी।

नदी अपहरण 9

एक नदी द्वारा अपने आसपास बह रही किसी दूसरी नदी के पानी को चुरा ले जाने को भूवैज्ञानिक नदी अपहरण कहते हैं। ऐसा कब संभव होता है और अपहरण के बाद अपहरित नदी का क्या अंजाम होता है . . . ?

प्रकाश संश्लेषण . . 43

प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में सूर्य का प्रकाश किस तरह मददगार है; पत्तियों में उपस्थित हरा पदार्थ 'क्लोरोफिल' क्या है; पत्तियों में यह कहां मिलता है; प्रकाश संश्लेषण में इसकी क्या और कैसी भूमिका है; हवा की कार्बन डाइऑक्साइड पत्तियों में कहां जाती है? उसे कौन ग्रहण करता है? उससे ग्लूकोज़ और मंड कैसे बनता है?

स्त्री शिक्षा 59

स्त्री-शिक्षा न सिर्फ सामाजिक व आर्थिक विकास में मददगार साबित होती है बल्कि समाज में समानता भी स्थापित करती है। एक बार यह प्रक्रिया शुरू हो जाए तो अपने आप को बढावा देती रहती है – अगर स्त्री-पुरुष समानता बेहतर होगी तो ज़्यादा लड़कियां स्कूल जाएंगी, जिससे लड़कियों की शिक्षा की दर में वृद्धि होगी, और . . . ।

शैक्षिक संदर्भ

अंक 30

नवंबर 1999 - मार्च 2000

इस अंक में

आपने लिखा 4

नदी अपहरण 9
संजय कुमार तिवारी

चुंबक इतिहास के 19
लॉयड विलियम, ग्लेन टकर

हवा का दबाव 35
अमिताभ मुखर्जी

पौधों में भोजन 43
किशोर पंवार

ज़रा सिर तो खुजलाइए . . . 57

स्त्री शिक्षा 59
ज्यों द्रेज़

भारत में रेखागणित 71
रामकृष्ण भट्टाचार्य

कहां है मेरे दोस्त 87
प्रदीप गोठोस्कर

जीवन चक्र ऐसा भी 96
उमेश चौहान

आपने लिखा-

संदर्भ का 29 वां अंक पढ़ा। श्री रमाकांत अग्निहोत्री के लेख 'बच्चों की भाषा सीखने की क्षमता' (भाग-2) के विषय में मुझे बहुत कुछ कहना है:

'स लिखना' – लेखक ने स लिखने के दो प्रकार बताकर दूसरे प्रकार को सिखाने में क्या आपत्ति है पूछा है। मेरा मानना है कि पहला प्रकार – र स्‍ स ही सही है। चूंकि हिन्दी भाषा की लिपि देवनागरी है और यह बाएं ये दाएं लिखी जाती है। अतः इसे ही सही माना जाएगा। दूसरी विधि में आपत्ति यह है कि बालक को सही दिशा पद्धति का ज्ञान नहीं होगा और वह लेखन की सही दिशा पद्धति का निर्वाह भविष्य में नहीं कर सकता।

'मात्राएं' लेखक का कहना है कि यह अवैज्ञानिक भाषा है, इसमें मात्राएं भी सीखना पड़ती हैं। मेरे विचार से यह भाषा वैज्ञानिक है इसलिए इसे वैज्ञानिक समझते हैं और मात्राएं इसलिए सीखना पड़ती हैं कि व्यंजन के साथ जुड़ी स्वर ध्वनि व स्वतंत्र स्वर ध्वनि में अंतर स्पष्ट हो जाए जैसे 'कई' एवं 'की'।

'लिपिदोष' रोमन लिपि की प्रशंसा करते हुए लेखक का कहना है कि शायद देवनागरी में ही ऐसा होता है कि एक ही वर्ण के कई रूप होते हैं और उसे चारों तरफ से बदला जा सकता है। रोमन लिपि में ऐसा कुछ नहीं। दाईं तरफ को बराबर लिखते जाइए, बस। इससे लगता है कि लेखक देवनागरी के दोष दिखाने के लिए रोमन लिपि को निर्दोष बता रहे हैं। जबकि रोमन का दोष यह है कि एक ही ध्वनि के लिए अनेक संकेत हैं जैसे 'क' के लिए K (King), C (Cat), Q (Queen), Ck (Cuckoo), Ch (Chemistry) आदि। इसी प्रकार U कहीं 'अ' है (But), तो कहीं 'उ' है (Put)। देवनागरी में यह दोष तो नहीं है। अपितु एक ध्वनि के लिए एक ही संकेत है।

लेखक को अगली शिकायत है कि 'इ-ई' तथा 'उ-ऊ' में कोई विशेष अंतर नहीं रह गया है। यदि हममें से ही कई शिक्षक इस अंतर को नहीं समझ पाए हैं तो वे इनका अंतर कैसे समझा पाएंगे। 60-70 के दशक में विद्यालयों में श्रुतलेख लिखाया जाता था, जिसमें मात्राओं का सही ज्ञान व अंतर समझाया जाता था। आज वह श्रुत लेख ही नहीं है तो वर्तनी में अशुध्दि तो होना ही है। तथा अशुध्दि के कारण अंतर समझना कठिन है। 'चिता व चीता' में अंतर है या नहीं पाठक स्वयं निर्णय करें।

'ऋ' – लेखक को अगली शिकायत ऋ से है। यह मूलतः संस्कृत स्वर-ध्वनि है जिसका उच्चारण जीभ द्वारा मूर्धा को स्पर्श (हल्का-सा) करने से होता है। संस्कृत व आधुनिक भारतीय भाषाओं के बीच पाली, प्राकृत, अपभ्रंश आदि कई भाषाओं की पीढ़ियां गुज़री हैं, तो कुछ ध्वनियों के उच्चारण में अंतर आना स्वाभाविक है। लेखक आगे कहता है – "बच्चे ऋषि को रिशि, विष को विश . . . आदि लिखें तो उनका क्या दोष? उन्हें तो सही लिखने

के लिए सराहना मिलनी चाहिए, लेकिन उन्हें तो सदैव गलत लिखने के लिए डांट पड़ती है।" महोदय प्रत्येक भाषा व लिपि के अपने कुछ नियम होते हैं। उन्हीं नियमों के कारण या यूं कहें, उन नियमों के पालन से ही भाषाएं जीवित रहती हैं। अन्यथा बुक (Buk पुस्तक), अथवा केट (Ket बिल्ली) लिखने पर भी सराहना मिलनी चाहिए। क्यों इन वर्तनियों को गलत मानते हैं। वस्तुतः बच्चे को शुद्ध बोलना व शुद्ध पढ़ना सिखाया जाए तो 'रिशि' व 'ऋषि' के बीच अंतर वह स्वयं समझ लेगा।

'जैसा बोलो वैसा लिखो' लेखक ने इस उक्ति का अनर्थ प्रस्तुत किया है। वस्तुतः इसका अर्थ है कि देवनागरी लिपि में ध्वनि व ध्वनि संकेत में अंतर नहीं है, जैसा कि अन्य लिपियों में यह दोष है। रोमन लिपि को ही लें – A, B, C इनका ध्वनि संकेत है ए, बी, सी तथा ध्वनि देखें तो A कहीं अ है तो कहीं ए। B का ब, तथा C का कहीं क है तो कहीं स। देवनागरी में यह दोष नहीं है। अतः स्पेलिंग रटना नहीं पड़ता। यदि सही उच्चारण सिखाया जाए तो यह नहीं बताना पड़ेगा कि बोला जाएगा रिशि लेकिन लिखना है ऋषि। बालक खुद ऋषि उच्चारण करेगा व लिखेगा भी।

'क़ ख़ ग़ ज़ फ़' चूंकि अरबी भाषा की ध्वनियां हैं अतः इनके उच्चारण में अंतर तो होगा ही। भाषा वैज्ञानिकों का मानना है कि वही भाषा समृद्ध होती है जिसमें शब्द भंडार समृद्ध होता है। शब्द भंडार बढ़ाने के लिए अन्य भाषा के शब्दों को अपने में समाहित कर लेना यह किसी भी भाषा की विशेषता होती है। अतः कयामत, कसाई . . . आदि शब्दों को हिन्दी से निकालने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। यदि इन्हें निकाला जाता है तो अपार्टमेंट, वकील, इंजिनियर आदि शब्दों को भी निकाला जाना चाहिए। फिर कोई हिन्दी विरोधी सह निवास, अभिभाषक तथा अभियान्त्रिक आदि शब्दों का मज़ाक बनाएगा।

'वर्तनी के दोहरे प्रचलन' उपशीर्षक के अंतर्गत लेखक ने, 'हलन्त का क्या औचित्य है?' प्रश्न करके पाठकों को भ्रमित करने का प्रयास किया है। हलन्त का चिह्न केवल स्वर रहित व्यंजन के नीचे ही लगाया जाता है। संस्कृत व्याकरण में व्यंजन ध्वनि समूह को हल् शब्द से संबोधित किया है। जो ध्वनि स्वर रहित है उसे हल्+अंत हलन्त चिह्न से स्पष्ट किया जाता है। जैसे क् तथा क (क् + अ)। आगे समस्या बताई गई है कि श्रीमान् व महान् सही है या श्रीमान व महान। संस्कृत के अनुसार श्रीमान् तथा महान् रूप सही है किन्तु हिन्दी में दोनों रूप प्रचलित हैं।

इसी प्रकार बच्चों को समझाया जा सकता है कि 'गयी' क्यों सही है व 'गई' क्यों गलत? जाने की क्रिया का भूतकाल पुल्लिंग में 'गया' रूप बनता है न कि 'गआ' इसलिए स्त्रीलिंग में 'गयी' रूप बनेगा न कि 'गई'।

क्रम व कर्म में प्रयुक्त र नीचे व ऊपर कब जाता है? इसे स्पष्ट कर पाने में लेखक सफल नहीं हो पाया। वस्तुत: कारण यह है कि संयुक्त व्यंजन में जिसका उच्चारण पहले होगा वह स्वर रहित होगा। जैसे क्रम में 'क्' स्वर रहित है तथा 'र' स्वर युक्त जबकि कर्म में 'क' स्वर युक्त होते हुए स्वतंत्र है तथा स्वर रहित 'र' स्वर युक्त 'म' से जुड़ा है। इसी प्रकार 'अर्क' में स्वर रहित 'र्' स्वर युक्त 'क' में जुड़ा है। अत: स्वर रहित 'र्' ऊपर जाता है तथा स्वर युक्त 'र' नीचे।

लेखक ने पूरे लेख में कई जगह 'जटिल है, जटिल है' कहकर हिन्दी व देवनागरी की ध्वनियों व वर्तनी को जटिल सिद्ध करने का प्रयास किया है। इस संदर्भ में मुझे अपने गणित के शिक्षक की बात याद आ रही है कि गणित कठिन विषय नहीं है लेकिन उसे 'कठिन है कठिन है' कहकर कठिन बना देते हैं। अत: शिक्षक का दायित्व है कि वह लिपि संबंधित समस्या के समाधान के लिए स्वयं ज्ञान प्राप्त करे तथा छात्रों को समझाएं।

अंत में यह जानकर आश्चर्य हुआ कि लेखक स्वयं भाषा विज्ञान के प्राध्यापक हैं, साथ ही प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम से भी जुड़े हैं। ऐसी स्थिति में उनसे हमारी अपेक्षा थी कि वे समस्याएं गिनवाने के बजाए कोई समाधन भी प्रस्तुत करते।

श्रीधर जोशी
बी-41, वैभव नगर, कनाड़िया रोड़, इंदौर, मध्यप्रदेश

संदर्भ- 28 में बच्चों की भाषा सीखने की क्षमता के बारे में अग्निहोत्री जी का लेख पढ़कर अपनी समझ को दुबारा ठीक करने का मौका मिला। हर अंक में भाषा से संबंधित रमाकांत जी कुछ इसी प्रकार लिखते रहें तो भाषा समझने में मदद मिलेगी।

'छिपा रहस्य' कहानी बड़ी मर्मस्पर्शी लगी, मैंने उसे दो बार पढ़ा। 'परीक्षाएं और सिर्फ . . .' लेख अच्छा लगा। 'क्या बहे बिजली के तारों में' से काफी कुछ सीखने को मिला। परंतु सेलों को जोड़कर परिपथ बनवाने में मुझे तो डर लगता है।

'ठोस, द्रव, गैस और कांच' लेख में बार-बार 'रोचक बात यह है', 'ये मज़ेदार लगा', लिखा है पर हमें तो पढ़ने पर रोचक लगा ही नहीं। इसमें मज़ेदार क्या है, बताइएगा।

गंगा गुप्ता
घंसौर, ज़िला सिवनी, मध्यप्रदेश

अंक 29 में सोमनाथ के मंदिर से संबंधित लेख पढ़कर लगा कि वास्तव में इतिहास ही घटनाओं को निरपेक्ष होकर देखने की दृष्टि दे सकता है, बशर्ते जब तक इतिहास की प्रस्तुति इतिहासकार तटस्थ होकर दे।

कुछ वर्षों पहले तक आम लोग अखबार में छपी खबरों पर सहजता से विश्वास कर लेते थे। लेकिन आज अखबार की अपेक्षा टी. वी. पर दी जाने वाली खबरों पर ज़्यादा भरोसा करते हैं क्योंकि

टी. वी. आंखों देखी है। फिर भी लोग यह भूल जाते हैं कि कैमरा भी सिर्फ वही दिखा रहा है जो उसके पीछे खड़ा आदमी दिखाना चाह रहा है। तात्पर्य यह कि हर युग में सूचना के स्रोतों की ईमानदारी पर घटना की प्रस्तुति निर्भर करती है।

अधिसंख्य इतिहासकारों ने तत्कालीन शक्तियों के हितलाभ के लिए इतिहास को वैसा प्रस्तुत किया है। इसलिए इतिहास वर्तमान को सुधारने में प्रेरक बनने की बजाए विध्वंसक रोल निभाता है।

सोमनाथ की घटना को मुख्यत: धार्मिक-साम्प्रदायिक मुद्दे की तरह इतिहासकारों द्वारा प्रस्तुत किया जाता रहा है, इन परिस्थितियों में सोमनाथ जैसे लेख का अपना एक महत्व है।

महेश बसेड़िया
हाशगाबाद, मध्यप्रदेश

सामनाथ पर रोमिला थापर का लेख पढ़ा। यह लेख बेहद पसंद आया क्योंकि गुजरात में रहते हुए भी इस लेख में सोमनाथ के बारे में जो जानकारी दी गई है उससे मैं अंजान था। आज इस लेख को पढ़कर सोमनाथ के बारे में सही जानकारी मिली।

सिंथेटिक दूध पर लेख पढ़कर दूध परीक्षण की इच्छा जाग गई है। कृपया रसायनयुक्त फिल्टर पेपर भेजिए।

ठक्कर कमलेश कुमार (शिक्षक)
पीपरडी, शिहोर
ज़िला भावनगर, गुजरात

संदर्भ का अंक 28 मेरे हाथों में है। इसका प्रत्येक अंक संग्रहणीय होता है। 'संदर्भ' को लिखे एक पाठक के पत्र में मैंने पढ़ा कि उन्हें इसके प्रथम दर्शन एक कबाड़ी के 'जंक बॉक्स' में हुए। तब यह सब पढ़कर मुझे उन जैसे सज्जनों पर तरस आई जो 'संदर्भ' को रद्दी या कबाड़ समझते हैं।

'संदर्भ टीम' का पत्रिका प्रकाशन में विलम्ब से संबंधित तर्क लाज़िमी है। पत्रिका के तेवर और रूझान के अनुरूप स्तरीय सामग्रियों के नितांत अभाव जैसी परिस्थितियों के बीच दो के बजाय तीन-चार महीने में ही सही 'संदर्भ' अपने स्वभाव को बरकरार रखे हुए है; यही इसकी सबसे बड़ी उपलब्धि मानी जानी चाहिए। दोष तो पाठकों का है जो अधिकाधिक व्यक्तियों को संदर्भ की धारा से नहीं जोड़ पा रहे हैं।

बहरहाल, 'संदर्भ' के अंक 28 में कैरन हैडॉक का लेख 'परीक्षाएं और सिर्फ परीक्षाएं' हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर कुठाराघात करता है। वास्तव में भारतीय विद्यालय केवल रट्टू तोते पैदा कर रहे हैं।

खूबसूरत, कमसीन, डेम्सल फ्लाई में 'शुक्राणुओं का सफरनामा' सचमुच रोचक लगा।

अगले अंक की प्रतीक्षा में।

मनीष मोहन गोरे
ारखपुर विश्वविद्यालय
उत्तरप्रदेश

कहानियां भारतीय लेखकों की भी दें तो ज़्यादा बेहतर हो। साथ ही संदर्भ में कुछ और भी रोचक सामग्री का समावेश हो। यद्यपि विज्ञान पर आधारित सामग्री निश्चित रूप से काफी ज्ञानवर्धक होती है।

गिरिजा कुलश्रेष्ठ
ग्वालियर, मध्यप्रदेश

आपके द्वारा भेजा फिल्टर पेपर मिला। हमने हमारे डेयरी के दूध का परीक्षण किया तो पाया कि हमारा दूध पूर्णत: शुद्ध है।

फिर 'राजस्थान सरस दूध थैली' के दूध के साथ भी प्रयोग दुहराकर देखा। उसमें फिल्टर पेपर डाला; जब उसको सफेद कागज़ पर रखा तो हल्का पीला नज़र आया। हम यह तय कर पाने में असमर्थ हैं कि दूध शुद्ध है या अशुद्ध। हम फिल्टर पेपर पोस्टकार्ड पर चिपका कर भेज रहे हैं, आप ही बताए।

हमारा सुझाव है कि आप अन्य खाद्य पदार्थों जैसे: चाय, चीनी, नमक, मिर्च, हल्दी, धनिया, बेसन, तेल इत्यादि चीज़ों में मिलावट का परीक्षण कैसे किया जाए इस पर भी लेख प्रकाशित कीजिए।

पवन जैन
नीमच खेड़ा, उदयपुर
राजस्थान, 331001

पोस्टकार्ड पर चिपकाई फिल्टर पट्टी रास्ते में अलग हो गई, इसलिए आपको दोबारा प्रयोग करके पट्टी फिर से भेजनी पड़ेगी।

– सं. म.

संदर्भ का 29वां अंक रोचक लगा। काजल कुमार नंदी का लेख मैंने अन्य शिक्षकों को भी पढ़ने के लिए दिया। मैंने इसे आजमाया, मज़ा आया, छात्राओं को मैंने प्रश्न पत्र बनाने, एवं कॉपी चैक करने पर नाम न लिखकर, बल्कि कोई 'कोड वर्ड' लिखने को कहा।

इतने बौद्धिक लेखों के बीच श्री शरद जोशी की व्यंग्य रचना 'एक शंख बिन कुतुबनुमा' ने जायका तो बदला ही, आनंद भी आया।

कविता शर्मा
हरदा, मध्यप्रदेश

शैक्षिक संदर्भ का अंक 29 हाथों में आया और सभी लेख साथ ही पढ़ डाले।

'एक दिन कक्षा में. . .' लेख पढ़ना शुरू ही किया था कि लगा अरे! यह तरीका तो मैं भी अपना रहा हूं। अंतर सिर्फ इतना है कि मैं योजना बनाकर पांचवीं, सातवीं और दसवीं तक की कक्षाओं में कर रहा हूं। काजल कुमार नंदी का लेख उत्कृष्ठ रहा। सभी शिक्षकों से आशा है वे इस लेख से ज़रूर लाभ उठाएं क्योंकि यह प्रयोग काफी हद तक सफल है।

'चुंबक' तथा 'सिंथेटिक मिल्क' लेख भी उत्कृष्ट थे।

अरविंद कुरील
पंजाबी कॉलोनी,
जी. टी. बी. नगर (पूर्व)
मुंबई , 400037

नदी अपहरण

पृथ्वी के लंबे इतिहास में कभी-कभी देखने को मिलता है कि पास-पास बहने वाली नदियों में से एक नदी का कुछ पानी दूसरी नदी अपने प्रवाह में मिला लेती है। कब और कैसे होती हैं ऐसी घटनाएं, इसकी जांच-पड़ताल करता है यह लेख।

संजय कुमार तिवारी

शुरुआत एक किस्से से करते हैं। वर्जिनिया प्रांत (अमरीका) की ब्लू रिज पहाड़ी में कुछ साल पहले एक के बाद एक तीन नदियों का अपहरण हो गया। लेकिन इस सनसनीखेज खबर को न तो अखबारों में महत्वपूर्ण स्थान मिला और न अपहरणकर्ता पर कोई कार्यवाही की गई! असलियत यह थी कि इन तीन नदियों का अपहरण एक अन्य नदी ने किया था। भूवैज्ञानिकों के अनुसार नदी द्वारा नदी का अपहरण एक सामान्य प्रक्रिया है, इसके लिए इस तरह परेशान होना ठीक नहीं है। हां, यह ज़रूर है कि अगर आसपास ऐसा नदी अपहरण हुआ हो तो वह भूवैज्ञानिकों को अध्ययन का बहुत अच्छा मौका देता है।

इतना पढ़कर किसी को भी जिज्ञासा हो सकती है कि नदी का अपहरण आखिर मामला क्या है? नदी अपहरण की बात शुरू करने से पहले अन्य कुछ बातों की चर्चा करना लाज़मी होगा।

जल विभाजक

नदियों के बारे में कुछ मोटी-मोटी जानकारी तो हमें होती ही है। जैसे नदियों का उद्गम पर्वतीय क्षेत्रों (ऊंचे स्थानों) से किसी झील, झरने या हिमनद (ग्लेशियर) द्वारा होता है। ऊंचे स्थानों से पानी ढाल के अनुरूप नीचे

की ओर बढ़ता है जिससे धीरे-धीरे उस स्थान पर नाली का निर्माण होता है। यह नाली बड़ी तथा गहरी होकर एक नाले में बदल जाती है। इस प्रकार बहुत-सी नालियों और नालों के मिलने से एक नदी अस्तित्व में आती है। अब यह नदी अपना सफर समुंदर तक तय करती है या फिर उसका सफर बीच में ही कहीं खत्म हो जाएगा, यह तो उसमें मौजूद पानी की मात्रा और ढलान पर निर्भर करता है।

लगभग सभी प्रमुख नदियां पानी की पूर्ति के लिए अपनी सहायक नदियों से मिलने वाले पानी पर निर्भर होती हैं। बारिश के दौरान गिरने वाले पानी का कुछ हिस्सा वाष्पीकृत हो जाता है, कुछ हिस्सा ज़मीन द्वारा सोख लिया जाता है; लेकिन काफी बड़ा हिस्सा ज़मीन पर बहता हुआ नालियों, नालों, छोटी नदियों के माध्यम से नदियों में जा मिलता है। किसी नदी में जहां-जहां से पानी आ कर मिल रहा है वह पूरा इलाका नदी के प्रवाह क्षेत्र के अंतर्गत माना जाता है। इस बात को इस उदाहरण से भी समझ सकते हैं कि जिस प्रकार एक पेड़ में कई शाखाएं तथा उन शाखाओं में बहुत से पत्ते होते हैं; उसी प्रकार एक नदी में अनेक सहायक नदियां आकर मिलती हैं तथा उन सहायक नदियों की भी

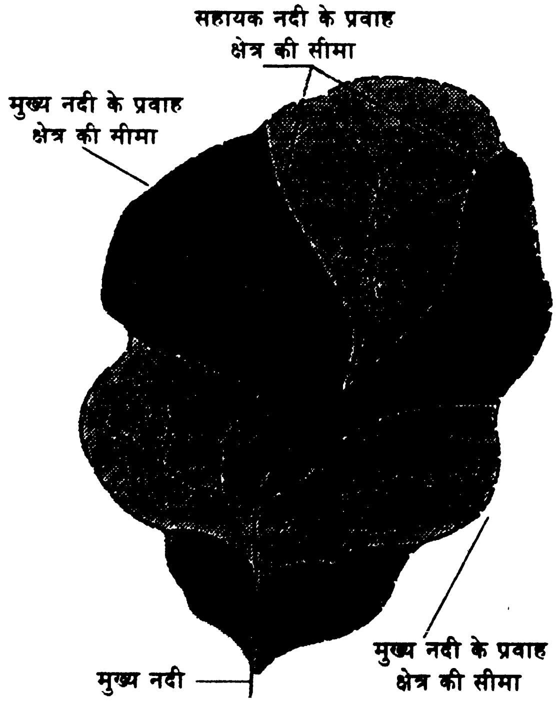

नदी का प्रवाह क्षेत्र: किसी प्रमुख नदी में जहां से पानी आ रहा है वह सभी इलाके उसके प्रवाह क्षेत्र के हिस्से माने जाते हैं। इसके आधार पर किसी नदी के प्रवाह क्षेत्र की सीमा का निर्धारण किया जा सकता है। आमतौर पर मुख्य प्रवाह क्षेत्र काफी लंबा-चौड़ा होता है। इसी तरह सहायक नदियों के प्रवाह क्षेत्र की सीमाएं निर्धारित की जा सकती हैं। इस चित्र में एक नदी का मुख्य प्रवाह क्षेत्र और सहायक नदियों के प्रवाह क्षेत्रों को दिखाया गया है। इस उदाहरण में प्रवाह क्षेत्र पत्ती के आकार जैसा है लेकिन यह ज़रूरी नहीं है कि हरेक नदी का प्रवाह क्षेत्र ऐसा ही आकार लिए हो।

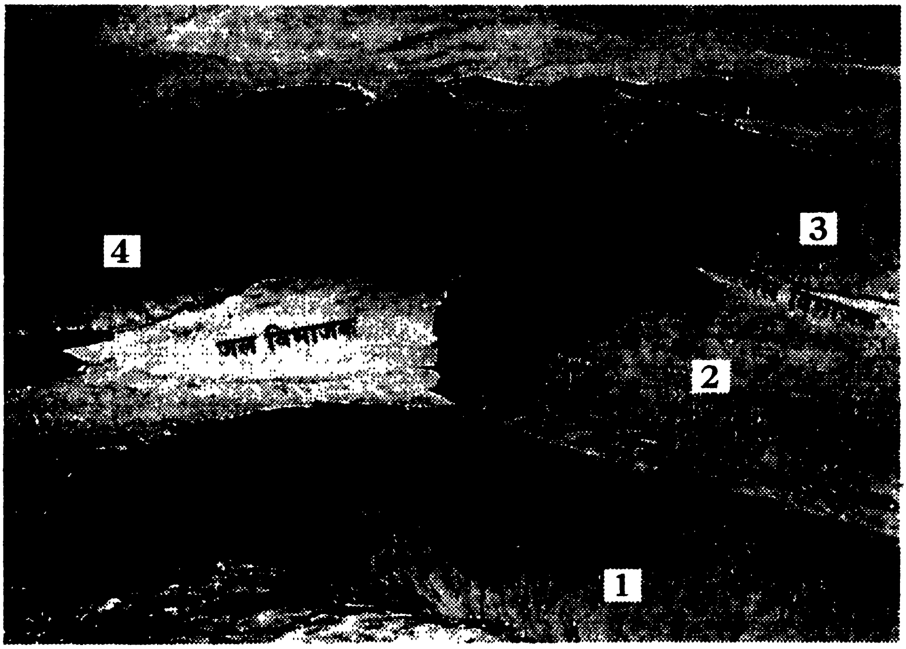

जल विभाजक: अमेरिका की ब्रेकॉन-बीकॉन पहाड़ी (दक्षिणी वेल्स) में काफी मज़ेदार स्थिति है। यहां तीन-चार नदियों के प्रवाह क्षेत्र साफ -साफ देखे जा सकते हैं जिन्हें 1 , 2 , 3 और 4 से दर्शाया गया है। प्रवाह क्षेत्रों को अलग - अलग करने वाले तीन जलविभाजक भी दिख रहे हैं। नदियां 1 , 2 और 3 शीर्ष अपरदन कर रही हैं जिससे नदी क्रमांक 4 के अस्तित्व को खतरा बन सकता है।

सहायक नदियां होती हैं। इन सभी का कार्य अपने आसपास के क्षेत्रों में हुई वर्षा के पानी को मुख्य नदी तक पहुंचाना होता है।

अक्सर पर्वतीय स्थानों में एक से ज़्यादा नदियों का उद्गम होता है। ऐसी परिस्थिति में हरेक नदी का अपना निश्चित प्रवाह बेसिन (Drainage Basin) होता है और दो प्रवाह बेसिन की सीमा को बनाने वाला ऊंचा भाग जल विभाजक (Water Divide) होता है। ये जल विभाजक एक नदी के पानी को दूसरी नदी में जाने से रोकते हैं।

नदी अपहरण

अब यदि किसी दूसरी नदी के पानी को अपने प्रवाह क्षेत्र में लाना हो तो नदी को जल विभाजक को काटना होगा। यदि कोई नदी जल विभाजक को काट पाने में सफल हो जाए तो दूसरी नदी के प्रवाह क्षेत्र के पानी का अपहरण कर लेती है। इसे भूविज्ञान की भाषा में नदी अपहरण कहते हैं। जो नदी अपहरण करती है उसे हारिणी नदी (Pirate) और जिसका अपहरण किया है उसे हरिता नदी (Beheaded) कहा जाता है। और जिस बिन्दु पर

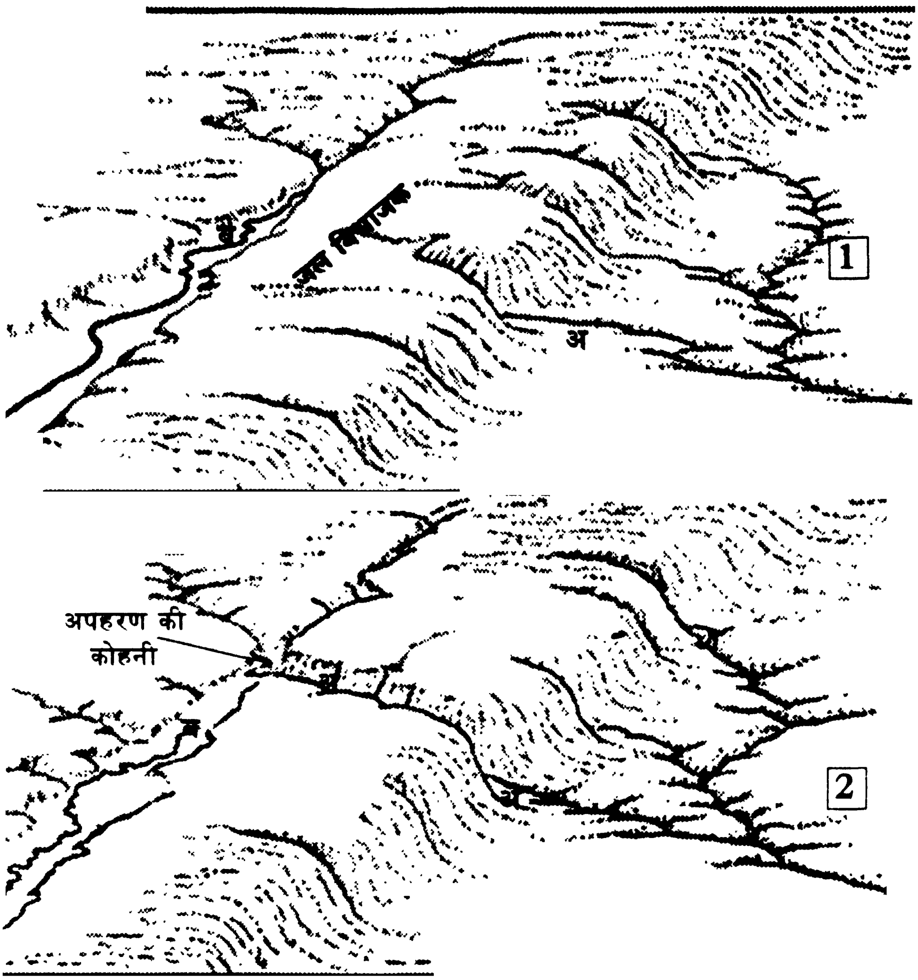

नदी अपहरण की अवस्थाएं: किसी भी नदी का अपहरण रातोरात नहीं होता; अपहरण एक धीमी प्रक्रिया है। यहां दिए उदाहरण में दो नदियां एक-दूसरे के लंबवत बह रही हैं। सुविधा के लिए इन्हे नदी 'अ' और नदी 'ब' नाम दे देते हैं। (चित्र-1)

नदी 'अ' में शीर्ष अपरदन की प्रक्रिया चल रही है; फलस्वरूप उसने जलविभाजक को काटना शुरू कर दिया है। एक लंबे समय तक यह क्रिया धीरे-धीरे चलती रहती है। अंततः नदी 'अ' जलविभाजक को पूरी तरह काट देती है (चित्र-2)।

जलविभाजक के कट जाने के बाद 'ब' नदी का जल अपने पुराने मार्ग से बहने की बजाए नदी 'अ' में आने लगता है। 'ब' नदी ने जहां से मार्ग बदलकर नदी 'अ' में बहना शुरू कर दिया, उस स्थान को अपहरण की कोहनी (Elbow Of Capture) कहते हैं। 'ब' नदी की पुरानी घाटी में एक पतली धारा अभी भी बह रही है लेकिन 'ब' नदी अपनी पुरानी रौनक खो चुकी है।

अपहरण होता है उसे अपहरण की कोहनी (Elbow Of Capture) कहते हैं। अब सवाल यह उठता है कि किन परिस्थितियों में अपहरण की घटना होती है और किस तरह नदी इस काम को अंजाम देती है।

सामान्य स्थितियों में नदी के उद्‌गम से लेकर समुन्दर में मिलने तक के सफर तो तीन हिस्सों में बांटा जा सकता है – युवावस्था, प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था। इसी तरह नदी के तीन प्रमुख कार्य होते हैं – अपरदन, परिवहन और निक्षेपण।

जब नदी अपने उद्‌गम से निकलती है तो तेज़ ढाल के कारण पानी का बहाव अधिक होता है जिससे नदी अपने किनारे तथा तली को काटती है यही 'अपरदन' होता है। तोड़े हुए चट्टानों के टुकड़ों को नदी अपने पानी के साथ मिलाकर ढोती है यह 'परिवहन' है। जब नदी अपने साथ लिए मिट्टी, बालू एवं कंकड़-पत्थर को ढोने में असमर्थ हो जाती है तो उसे छोड़ने लगती है, जिसे 'निक्षेपण' कहते हैं। अपनी युवावस्था में नदी का प्रमुख कार्य है अपरदन या कटाव। प्रौढ़ावस्था में नदी कटाव का काम कम करती है, इस दौर में परिवहन और निक्षेपण उसके प्रमुख कार्य बन जाते हैं। वृद्धावस्था में नदी का प्रमुख काम निक्षेपण ही होता है।

ज़्यादातर नदी अपहरण के किस्से नदी की युवावस्था में ही होते हैं। इस अवस्था में अपहरण का प्रमुख कारक है – नदी की कटाव क्षमता। नदी इस दौर में न सिर्फ अपनी घाटी को गहरा करने की कोशिश करती है अपितु अपने उद्‌गम की ओर भी कटाव की कोशिश करती है। उद्‌गम की ओर होने वाले कटाव को 'शीर्ष अपरदन' (Head-ward Erosion) कहते हैं।

उद्‌गम की ओर अपरदन करने से जल विभाजक पीछे की ओर खिसकता जाता है। खिसकते-खिसकते एक ऐसी स्थिति आती है कि एक नदी का उद्‌गम दूसरी नदी की घाटी से मिल जाता है और दूसरी नदी का अपहरण हो जाता है।

नदी का उद्‌गम की ओर अपरदन करना प्रत्येक स्थान पर तथा हर समय संभव नहीं है; वरन् कुछ ऐसी विशेष परिस्थितियां बनती हैं तभी शीर्ष अपरदन और उसकी वजह से नदी का अपहरण संभव हो पाता है।

नदी के शीर्ष की तुलना एक चम्मच से की जा सकती है। तेज़ ढाल वाली घाटी में नदी किनारों की अपेक्षा शीर्ष का कटाव तेज़ी से करती है। तेज़ बारिश या तेज़ बहाव के कारण भी इसी बिन्दु पर कटाव की सबसे ज़्यादा संभावना होती है।

शीर्ष की ओर चट्टानें कमज़ोर और अपारगम्य हों (जैसे शेल, क्ले आदि) तो शीर्ष अपरदन के लिए

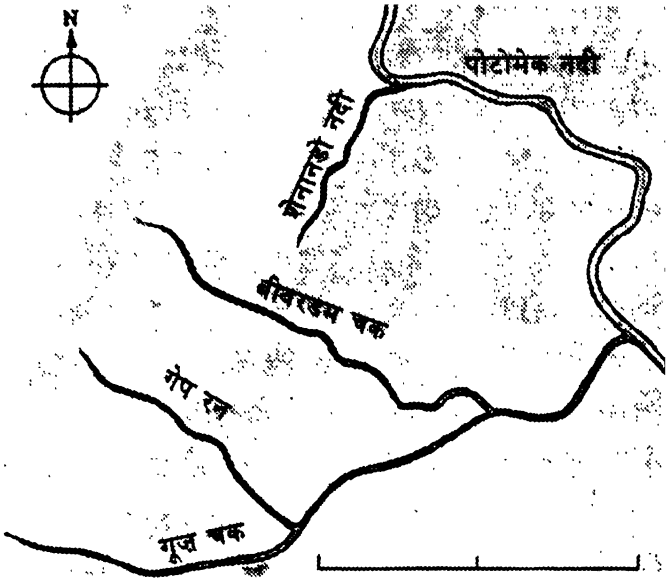

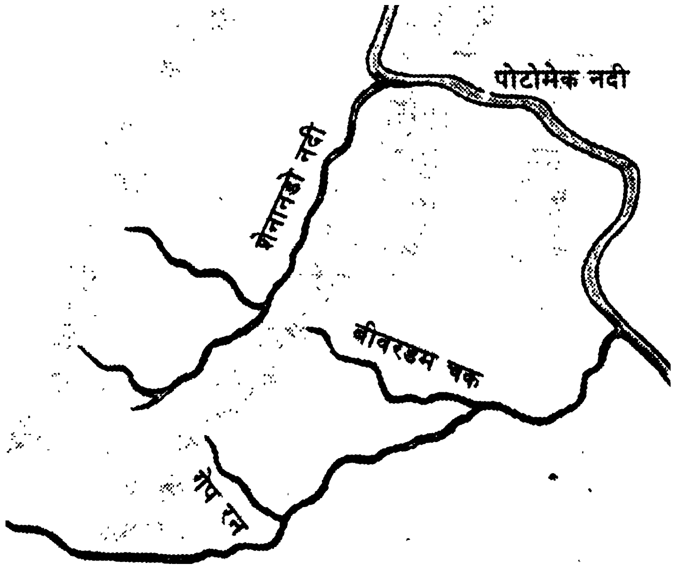

शेनानडो का अपहरण अभियान: ये चित्र ब्लू रिज, वर्जिनिया के हैं, जहां पोटोमेक नदी ब्लू रिज को काटती हुई बहती है। कई सहायक नदियां भी इस इलाके में पोटोमेक में आकर मिलती हैं। इन सहायक नदियों की फेहरिस्त में एक नाम शेनानडो का भी है।

1. पहले शेनानडो एक छोटी नदी हुआ करती थी, जो अपेक्षाकृत जल्दी कट जाने वाली चट्टानों के समांतर बहती थी। पोटोमेक की अन्य सहायक नदियों के रास्ते में कमज़ोर और कठोर दोनों किस्म की चट्टानें मौजूद थीं।

2

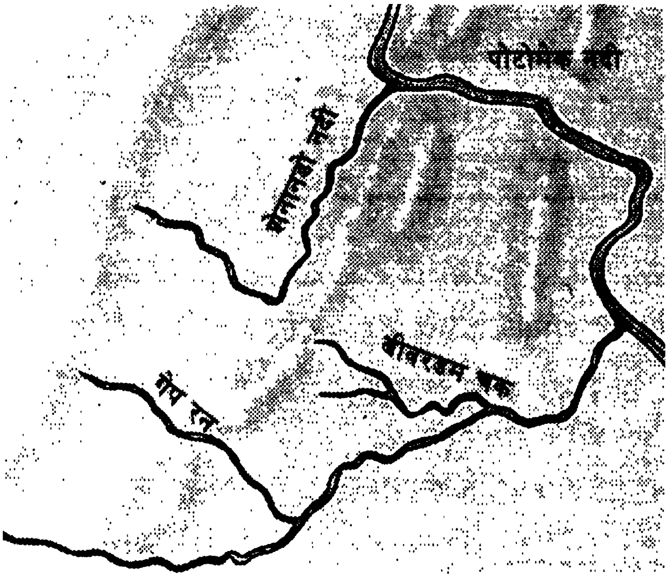

4

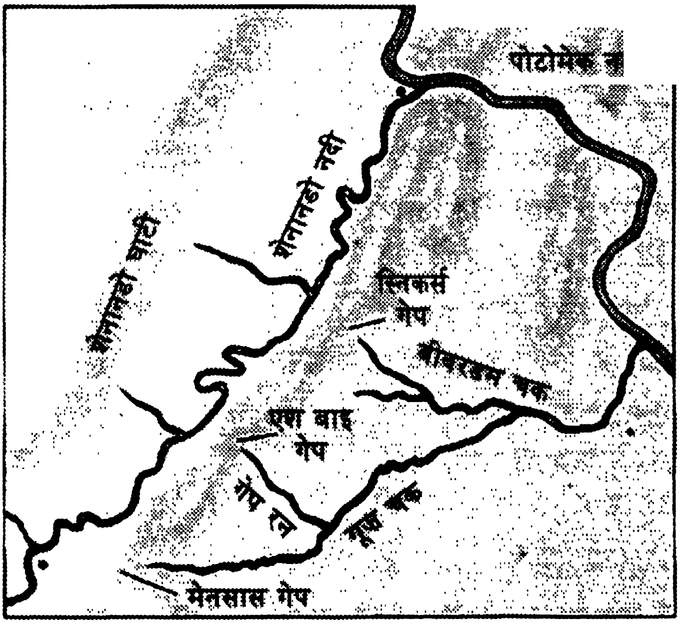

2. इन परिस्थितियों में शेनानडो ने पहले अपनी घाटी को गहरा किया और फिर शीर्ष की ओर कमज़ोर चट्टानों को काटने का क्रम जारी रखा। ऐसा करते हुए सबसे पहले बीवरडम की घाटी को अपनी चपेट में लिया।
3. उसके बाद गेप रन, गूज़ क्रीक का भी वही हश्र हुआ।
4. इस चित्र में वर्तमान स्थिति को दिखाया गया है जिसमें शेनानडो तो फल-फूल रही है लेकिन बीवरडम, गेप रन बस छोटी-छोटी जलधाराएं बन कर रह गई हैं।

सूखी नदी घाटी का क्या किया जाए?

वर्जिनिया में जब नदियों का अपहरण हो ही गया तो 'इस सूखी नदी घाटी का क्या इस्तेमाल किया जाए?' यह सवाल वहां की सरकार के सामने आया। इसका भी एक जन उपयोगी हल खोज लिया गया – आज अमरीका के चार लेन वाले चार हाई-वे यहां से गुज़र रहे हैं।

परिस्थितियां और भी माकूल होती हैं।

यदि नदी के शीर्ष की ओर झरना वगैरह आ जाए तो शीर्ष अपरदन की संभावनाएं बढ़ जाती हैं क्योंकि झरना अपने आसपास की पारगम्य (Permeable) चट्टानों को काटता है जिससे कुछ अंतराल के बाद ये चट्टानें भरभरा कर गिर जाती हैं।

शीर्ष अपरदन की गति चट्टानों की प्रकृति और नदी घाटी की ढाल पर निर्भर करती है। शीर्ष की ओर एक ही तरह की नरम चट्टानें हो और नदी घाटी का ढाल तेज़ हो तो शीर्ष अपरदन तेज़ी से होता है। लेकिन शीर्ष की ओर नरम-कठोर दोनों तरह की चट्टानें हों तो कटाव की गति असमान होगी।

कई बार यह भी देखने में आता है कि किसी जल विभाजक के दोनों ओर के ढाल समान स्वभाव के नहीं होते। यदि एक ढाल दूसरे की अपेक्षा अधिक तीव्र है तथा वहां की चट्टानें नर्म हैं तो निश्चित ही पहली नदी की अपेक्षा इस नदी का तल नीचा होगा। ऐसी स्थिति में जल विभाजक के कटने के बाद पहली नदी का जल दूसरी नदी में (जिस नदी का तल नीचा है) बहने लग सकता है।

यदि दूसरी नदी की घाटी चौड़ी तथा गहरी हो एवं वर्षा अधिक हो तो ये कारक भी पहली नदी के अपहरण में सहायक होते हैं।

हिन्दुस्तान में भी नदी अपहरण के ढेर सारे उदाहरण मिलते हैं। भारत के हिमालय क्षेत्र में 'कोसी' नदी ने अरूणा नदी का अपहरण कर लिया है। इसी तरह बानस की सहायक नदी ने सोन नदी की सहायक नदी कुशमहर का अपहरण कर लिया है।

अपहरण और भी तरह के

अभी तक नदी अपहरण की जो चर्चा की गई है उनका संबंध नदी की युवावस्था से है जहां नदी शीर्ष अपरदन से अपहरण का कार्य सम्पन्न करती है। प्रौढ़ावस्था में क्षैतिज अपरदन एवं नदी विसर्प (Meander) के कारण भी अपहरण होता है।

प्रौढ़ावस्था में नदी अपनी घाटी की तली को तो काटती ही है साथ-

ही-साथ अपने किनारों को भी काटती है। इस तरह के अपरदन निरंतर होते रहने से कभी-कभी दो नदियों की घाटियां एक दूसरे में मिल जाती हैं। इसके फलस्वरूप प्रमुख नदी जो बलवती और अधिक क्रियाशील होती है वह दूसरी नदी का अपहरण कर लेती है।

तीसरी अवस्था (वृद्धावस्था) में जब नदी समतल भूमि से होकर प्रवाहित होती है तो वह अक्सर घुमावदार रास्ता बनाकर बहती है। इस घुमावदार रास्ते को मिएंडर (Meander) कहते हैं। कभी-कभी दो नदियों के घुमावदार रास्ते इतने पास आ जाते हैं कि मिएंडर आपस में मिल जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में जिस नदी का प्रवाह तेज़ होता है वह दूसरी नदी का अपहरण कर लेती है। बाढ़ के समय भी नदियों के मोड़ों के

विसर्प का बनना और टूटना: मैदानी इलाकों से बहते हुए नदी का वेग कम हो जाने से वह रेत, गाद वगैरह को वहीं पटकती जाती है। इस निक्षेपण के कारण नदी थोड़ी लहराती हुई बहने लगती है। इस घुमावदार रास्ते को मिएंडर या विसर्प कहते हैं। यहां ऐसी ही एक नदी के लहरदार रास्ते को दिखाया गया है। कई बार पानी के अचानक तीव्र प्रवाह के कारण या बरसाती दिनों की बाढ़ के कारण नदी अपने घुमावदार रास्ते को छोड़कर सीधा रास्ता अपना लेती है। नदी के सीधा रास्ता अपना लेने के कारण 'यू' आकार का एक लूप कटकर अलग हो जाता है इसे ऑक्स-बो-लेक कहते हैं। चित्र में इस तरह से बनी काले रंग की झील दिखाई दे रही है।

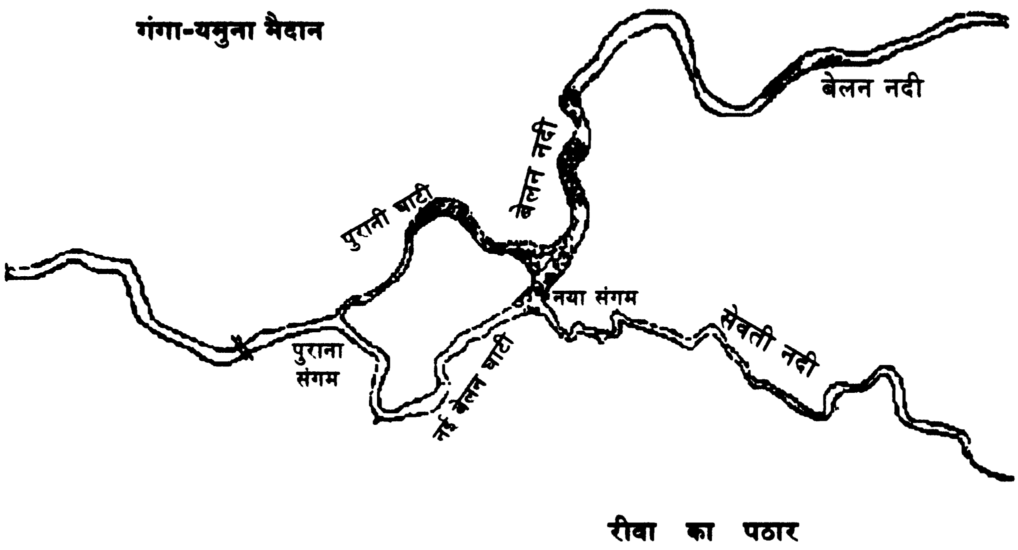

सेवती नदी का अपहरण: रीवा के पठार से गंगा-यमुना के मैदान की ओर बहने वाली सेवती नदी आगे चलकर बेलन नदी में मिल जाती है। वर्तमान स्थिति में इन दोनों नदियों का संगम पुराने संगम से 6 किलोमीटर ऊपर है। हुआ कुछ यूं कि बेलन नदी का घुमावदार रास्ता सेवती नदी के इतने पास आ गया कि पुराने संगम से काफी पहले ही नया संगम स्थल बन गया। और-तो-और बेलन नदी ने अपनी घाटी को छोड़कर सेवती नदी की घाटी में बहना शुरू कर दिया और बेलन नदी की पुरानी घाटी अब सूखी पड़ी है। अब इसे नदी अपहरण कहें या नदी की ज़ोर-ज़बरदस्ती?

मिलने से दोनों नदियों के बाढ़ के मैदान आपस में मिल जाते हैं तथा बड़ी नदी छोटी नदी का अपहरण कर लेती है। उत्तरी अमेरिका के डिट्रॉयट शहर के कुछ मील पश्चिम ह्यूरन नदी ने अपने मिएंडर के द्वारा ओकरन नदी के मार्ग का अपहरण कर लिया है।

उत्तरप्रदेश के इलाहाबाद ज़िले में देवघाट के पास बेलन नदी के मिएंडर ने सेवती नदी के निचले मार्ग का अपहरण करके सेवती नदी की घाटी में बहना शुरू कर दिया है। इस कारण बेलन, सेवती नदी का संगम अब पुराने संगम से 6 किलोमीटर ऊपर हो गया।

तो, यह है किस्सा नदी-अपहरण का। आमतौर पर इस तरह की घटनाएं जनसाधारण का ध्यान अपनी ओर खींच भी नहीं पाती लेकिन भूवैज्ञानिकों के लिए ये ज़रूर अध्ययन के मौके बन जाते हैं।

संजय कुमार तिवारी: एकलव्य के सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम से जुड़े हैं। भूगोल विषय का अध्ययन किया है।

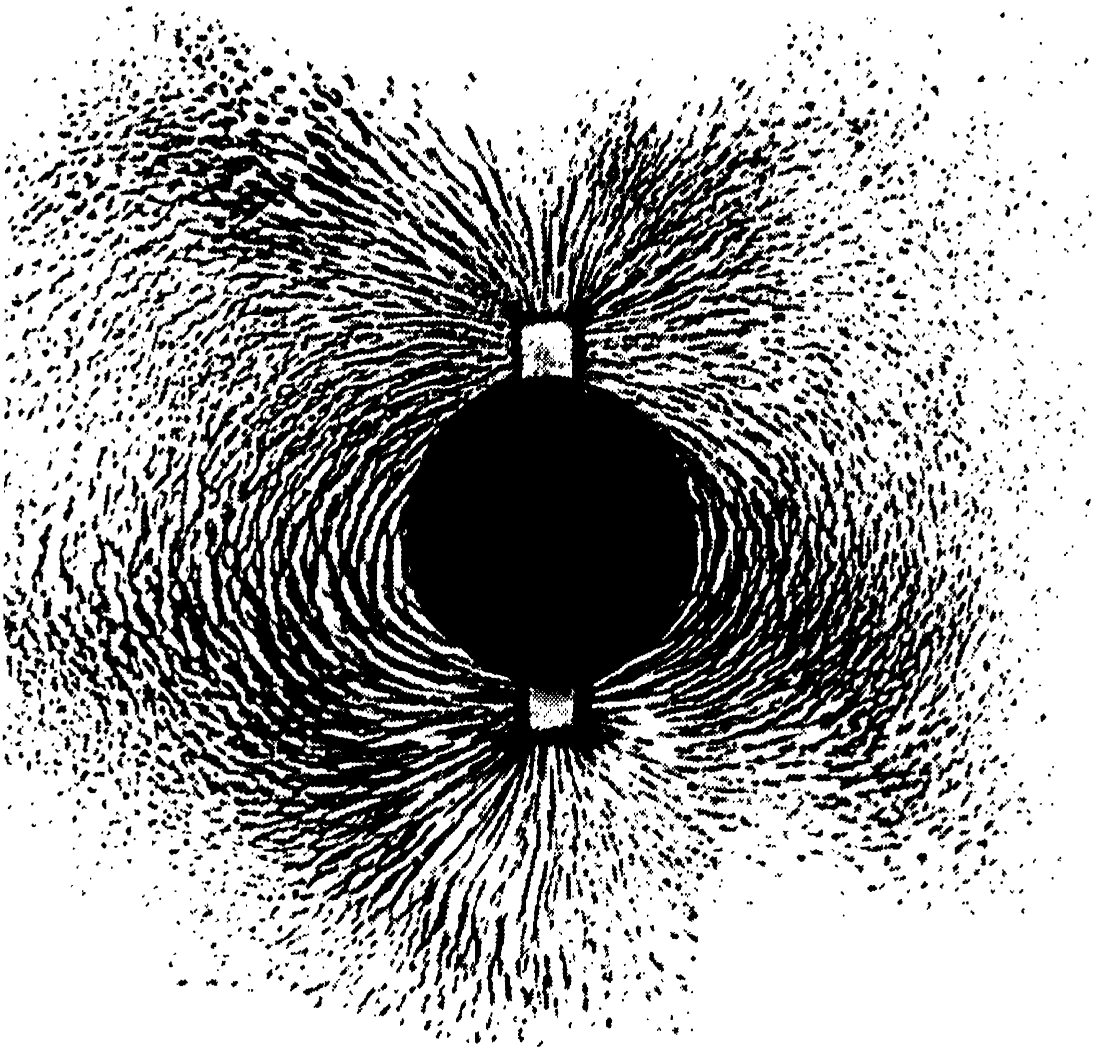

चुंबक
इतिहास के आइने में

लॉयड विलियम टेलर एवं फॉरेस्ट ग्लेन टकर

तकरीबन जब से दिशासूचक बना, तभी से सामान्य तौर पर यह पता था कि चुम्बकीय दिशासूचक ठीक उत्तर की ओर इंगित नहीं करता है। एक चीनी खगोलशास्त्री ने आठवीं सदी में बताया था कि उसके इलाके में दिशासूचक का विचलन दक्षिण से 3 अंश पश्चिम की ओर है। एक अन्य स्थान पर विचलन दक्षिण से 5^0 15' पूर्व की ओर था एवं 300 साल बाद इसी स्थान पर विचलन बढ़कर 7^0 30' हो गया था। इन अवलोकनों से (समय के लिहाज़ से) मापन की सटीकता का परिचय मिलता है। अलबत्ता, ये बिखरे हुए अवलोकन थे। चुम्बकीय विचलन के व्यवस्थित मापन का कोई रिकॉर्ड नहीं मिलता। यह काम काफी बाद में पाश्चात्य विश्व में हुआ।

चुम्बकीय विचलन के व्यवस्थित अध्ययन को शुरुआती गति देने का काम सन् 1492 में क्रिस्टोफर कोलम्बस ने किया। वह उस समय अपने हिसाब से ईस्ट इंडीज़ की समुद्री यात्रा पर था। स्पेन के राजा व रानी को लिखे एक पत्र में कोलम्बस ने अपनी खोज का वर्णन किया:

"जब मैं स्पेन से वेस्ट इंडीज़ की ओर यात्रा कर रहा था तब मैंने देखा कि एज़ोर्स से 100 लीग पश्चिम की ओर बढ़ने पर .... दिशासूचक की सुई, जो तब तक उत्तर-पूर्व की ओर इंगित कर रही थी, उत्तर पश्चिम की ओर घूम गई।"

जैसे ही यह अफवाह फैली कि दिशासूचक अनपेक्षित व्यवहार कर रहा है, जहाज़ के यात्रियों में खलबली मच गई थी। कोलम्बस ने किसी तरह उन्हें तसल्ली दी। उसने उन्हें यह समझाया, और उसे यकीन भी था कि वास्तव में दिशासूचक के नहीं बल्कि ध्रुव तारे के व्यवहार में विचित्रता है। साथियों के बीच बतौर खगोलशास्त्री उसकी अच्छी साख ने मामला सुलटा दिया। और 'अमरीका की खोज' के मार्ग में उत्पन्न एक और खतरा टल गया।

धीरे-धीरे दुनिया के अलग-अलग भागों में चुम्बकीय विचलन का तथ्य साबित हुआ तथा इसे रिकॉर्ड किया गया। चुम्बकीय विचलन की प्रथम प्रामाणिक तालिका रॉबर्ट नॉर्मन ने कोलम्बस के अवलोकन के लगभग 100 साल बाद सन् 1581 में तैयार की। आज दुनिया के हर हिस्से के चुम्बकीय विचलन के विस्तृत चार्ट उपलब्ध हैं। इनमें समान विचलन वाले स्थानों से गुज़रती हुई रेखाएं खिंची होती हैं। इन रेखाओं को समदिक्पाती रेखाएं (Isogonic Lines) कहते हैं। चूंकि विचलन में निरंतर बदलाव होते रहते हैं इसलिए ये चार्ट समय-समय पर नए सिरे से बनाने पड़ते हैं।

दरअसल जिस बात ने कोलम्बस

को हैरत में डाला वह विचलन से संबंधित नहीं थी। विचलन की बात तो बहुत पहले से ज्ञात थी। कोलम्बस को इस बात पर हैरत हुई कि शून्य विचलन के क्षेत्र भी होते हैं। यह वह रेखा है जिस पर चुम्बकीय सुई ठीक भौगोलिक उत्तर की ओर इंगित करती है। स्वाभाविक भी है कि पूर्व की ओर विचलन से पश्चिम की ओर विचलन तक पहुंचने में सुई शून्य विचलन से

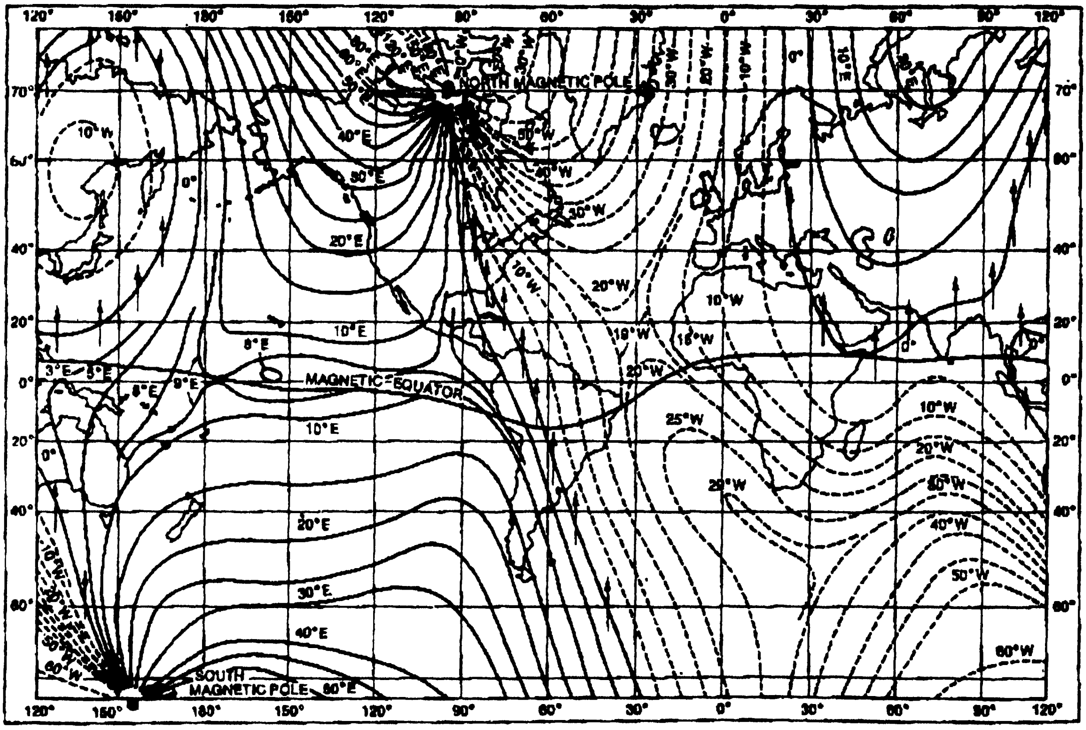

समदिक्पाती रेखाएं: इस नक्शे के बाहरी किनारों पर दिए गए अंक भौगोलिक अक्षांश और देशांतर हैं। नक्शे के भीतर समदिक्पाती रेखाएं हैं। इनमें पूर्वी विचलन दिखाती रेखाएं काली हैं और पश्चिमी विचलन दर्शा रही रेखाएं डॉटेड हैं। समदिक्पाती रेखा का अर्थ है कि उस रेखा पर किसी भी बिन्दु पर रखी गई चुंबकीय सुई भौगोलिक उत्तर से समान विचलन दिखाएगी यानी 20 डिग्री पश्चिम की समदिक्पाती रेखा पर कहीं भी चुंबकीय सुई रखी जाए तो वह ठीक भौगोलिक उत्तर की तरफ इंगित नहीं करेगी बल्कि उससे 20 डिग्री के कोण पर स्थिर रहेगी।

इस मानचित्र में चुंबकीय उत्तर-दक्षिण ध्रुव व चुंबकीय भूमध्यरेखा भी दिखाई गई है। चुंबकीय भूमध्यरेखा यानी पृथ्वी पर वे स्थान जहां चुंबकीय सुई का झुकाव (विचलन नहीं) शून्य हो यानी कि जहां चुंबकीय सुई एकदम क्षैतिज रहती है।

गौर से देखें तो इस नक्शे में कुछ रेखाओं पर उत्तर की ओर इंगित कर रहे तीर बने हैं; ये शून्य विचलन वाले इलाके हैं जहां चुंबकीय सुई ठीक भौगोलिक उत्तर दर्शाती है। ऐसे ही एक इलाके का ज़िक्र कोलंबस ने भी किया था।

होकर गुज़रेगी हीं।

कोलम्बस ने शून्य विचलन वाले क्षेत्र का संबंध कुछ जलवायु परिवर्तनों, चन्द काल्पनिक खगोलीय गड़बड़ियों से जोड़ दिया। उसने यह भी माना कि शून्य विचलन का संबंध 'सर्गासो सागर' से है जहां समुद्री वनस्पतियों का मशहूर जमावड़ा है। लिहाज़ा कोलम्बस का ख्याल था कि उसने एक ऐसा स्थान खोज लिया है जो पूरी धरती पर अनोखा व अद्वितीय है।

दिशासूचक: कुछ व्यापक असर

कोलम्बस की तरह पोप एलेक्ज़ेण्डर षष्ठम् के मन में भी इसी तरह के विचार पनपे होंगे, इसीलिए उन्होंने शून्य विचलन की इस रेखा को धरती के दो हिस्सों के बीच राजनैतिक विभाजन की रेखा निरूपित किया। पोप ने व्यवस्था बनाई कि इन दो हिस्सों में खोजा जाने वाला कोई भी नया इलाका क्रमशः स्पेन व पुर्तगाल को मिलेगा। स्पेन व पुर्तगाल दोनों उस समय विश्व शक्तियां थीं।

पुर्तगाल के तत्वाधान में 'वास्को डी गामा' ने भी दिशासूचक की मदद से काफी साहसिक यात्राएं कीं। उसने 'केप ऑफ गुड होप' से होकर 'ईस्ट इंडिया' का एक नया मार्ग खोज निकाला और इस तरह से कोलम्बस की अमरीका खोज को निरर्थक कर दिया। अर्थात् जहां कोलम्बस हार गया था, वहां वास्को डी गामा सफल हो गया। ईर्ष्या से जलते हुए स्पेन ने मेगेलान को आदेश दिया कि वह समुद्री मार्ग से पश्चिम की ओर यात्रा करते हुए उसी स्थान पर पहुंचने का प्रयास करे ताकि ईस्ट इंडीज़ को अपने (स्पेन के) अधीन किया जा सके।

स्थिति यह थी कि शून्य विचलन की रेखा से पूर्व की ओर यात्रा करके यह स्थान खोजा गया था, अतः यह पुर्तगाल के हिस्से में आता था। अब यदि इसी रेखा से पश्चिम की ओर बढ़ते हुए इस स्थान तक पहुंचा जा सके तो स्पेन इस पर अपना दावा कर सकता था। पोप एलेक्ज़ेण्डर की व्यवस्था की यही व्याख्या थी।

मेगेलान ने सन् 1520-22 के दौरान पूरी धरती का चक्कर लगाकर इस स्थान पर झण्डे गाड़ दिए। इस होड़ का आर्थिक-राजनैतिक परिणाम जो भी रहा हो, मगर उस वजह से विज्ञान ने जो तरक्की की उससे तो सभी देश लाभान्वित हुए ही।

तो धरती के चुम्बकत्व के अध्ययन से जो उपलब्धियां हुईं उन्हें किस पैमाने पर तोला जाए? व्यापक आर्थिक फेरबदल; राजनैतिक होड़ और उनसे उत्पन्न भयानक युद्ध; लोगों का अभूतपूर्व आवागमन; नस्लों का मेल-जोल तथा विभिन्न संस्कृतियों व धर्मों पर इसका प्रभाव; वैज्ञानिक खोजें जिनके फलस्वरूप जीवन के नए स्तर

परिभाषित हुए?

संक्षेप में, यह दुनिया जो एक दर्जन सदियों से निश्चेष्ट पड़ी थी अचानक एक सर्वथा नए नस्लवादी उद्यम की ताकत से हरकत में आ गई। और इसकी पृष्ठभूमि में थी एक छोटी-सी चुम्बकित सुई जो एक चूल पर अस्थिर ढंग से टिकी थी – मगर सदैव उत्तर की ओर इशारा करती हुई।

चुम्बकीय नमन की खोज

चुम्बक के मामले में खोजों की तो यह शुरुआत भर थी। जैसा कि अधिकांश अन्य मामलों में होता रहा है, चुम्बक के संदर्भ में भी ज्ञानार्जन को इस बात से रफ्तार मिली कि यह काम समाज के लिए उपयोगी है। इसके बाद, एक के बाद एक खोज के बीच सदियों का नहीं केवल दशकों का अंतराल रहा।

सन् 1544 में न्यूरेमबर्ग के एक पादरी जॉर्ग हार्टमैन ने देखा कि एक अचुम्बकित स्टील की सुई अपनी चूल पर संतुलित रहती है, मगर जैसे ही इसे चुंबकित किया जाता है इसका उत्तरी सिरा धरती की ओर झुक जाता है। उसने अपनी इस खोज की खबर 'प्रशिया' के काउंट अल्बर्ट को दी मगर पेरेग्राइन की ही तरह उसका खत भी अगले तीन सौ साल तक लोगों की नज़र से छिपा रहा।

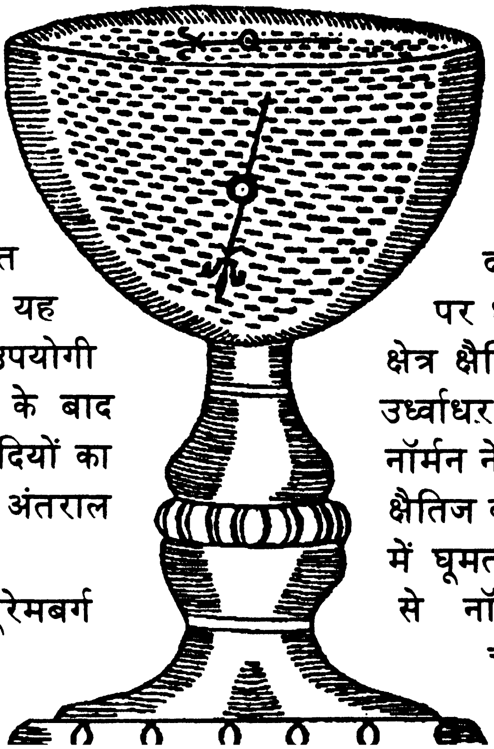

नॉर्मन की चुंबकीय सुई: यह सुई उर्ध्व तल में घूम सकती थी। इसकी मदद से नॉर्मन ने लंदन में चुंबकीय झुकाव पता लगाया।

इस प्रभाव को सन् 1576 में रॉबर्ट नॉर्मन ने फिर से खोजा। रॉबर्ट नॉर्मन वही है जिसने बाद में सन् 1580 में चुंबकीय विचलन का प्रथम चार्ट छापा। सुई का चुम्बकीय नमन (झुकाव) काफी ज़्यादा था। दरअसल इस अक्षांश पर धरती का चुम्बकीय क्षेत्र क्षैतिज नहीं बल्कि उर्ध्वाधर ही ज़्यादा होता है। नॉर्मन ने एक सुई बनाई जो क्षैतिज की बजाए उर्ध्व तल में घूमती थी। इसकी मदद से नॉर्मन ने लंदन में चुंबकीय सुई के झुकाव का मान 71 50

निकाला। सन् 1581 में प्रकाशित अपनी पुस्तक *'न्यू एट्रेक्टिव'* में नॉर्मन ने अपनी खोज का ब्यौरा इन शब्दों में प्रस्तुत किया:

"मैंने पाया कि सुई को लोडस्टोन से स्पर्श करने के बाद उत्तर बिन्दु कुछ मात्रा में क्षितिज से नीचे की ओर झुक जाता है। इसे फिर से संतुलित करने के लिए मुझे दक्षिण बिन्दु पर थोड़ा मोम लगाना पड़ा।"

चुंबकीय विचलन की तरह अब पृथ्वी के समस्त हिस्सों के लिए चुंबकीय नमन (या उन्नयन) के मान निकाले जा चुके हैं। इन्हें समनमन रेखाओं से दर्शाया भी गया है। नमन भी समय के साथ बदलता रहता है। नॉर्मन के वक्त में लंदन में चुंबकीय सुई का झुकाव 71^0 50' था, वह बाद के 150 वर्षों में बढ़कर अधिकतम 74^0 42' तक पहुंचा और तब से यह कम होता जा रहा है।

चुम्बकीय क्षेत्र की शक्ति

विचलन व झुकाव पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र की दिशा के दो पक्ष हैं। कुछ अर्थों में, पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र की शक्ति या तीव्रता की जानकारी कहीं ज़्यादा महत्व रखती है। अलबत्ता इस अवधारणा का विकास काफी देर से हुआ। इस दरम्यान चुम्बकत्व के

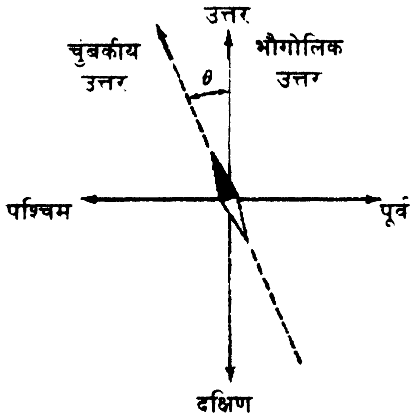

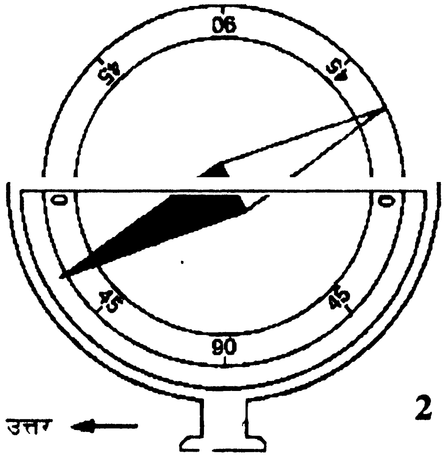

2

चुंबकीय झुकाव और विचलन: आमतौर पर दिक्सूचक का उत्तर ध्रुव जिस दिशा में रुकता है वह भौगोलिक उत्तर से कुछ हटकर होती है। भौगोलिक उत्तर से हटाव या विचलन को विचलन कोण कहा जाता है। (चित्र-1)

यदि चुंबकीय सुई को इस तरह कील में फंसाया जाए कि वह उर्ध्वाधर दिशा में भी घूम सके तो चुंबकीय सुई झुकाव को भी दर्शाती है। (चित्र-2) यह झुकाव चुंबकीय भूमध्य-रेखा पर सबसे कम यानी शून्य डिग्री होता है तथा चुंबकीय ध्रुवों पर नब्बे डिग्री होता है। किसी एक जगह पर भी चुंबकीय झुकाव समय के साथ-साथ बदलता रहता है।

अन्य पहलुओं को लेकर प्रमुख खोजें चलती रहीं। इन्हें हम कुछ समय के लिए एक तरफ रखकर पहले धरती के चुम्बकीय क्षेत्र की बात पूरी कर लेते हैं।

सन् 1776 में एक फ्रेंच गणितज्ञ व खगोलशास्त्री ज़्यां चार्ल्स बोर्डा ने एक तरीका खोज निकाला जिससे धरती के अलग-अलग स्थानों के चुम्बकीय क्षेत्रों की तीव्रता की तुलना की जा सकती थी। उसका तरीका दोलक द्वारा गुरुत्वत्वरण की तुलना की विधि के ही समान था। दोलन करती किसी चुम्बकीय सुई पर, दोलक की ही तरह, पृथ्वी के चुंबकीय बल क्षेत्र की तीव्रता का असर पड़ेगा। अंतर सिर्फ इतना है कि एक मामले में असर पृथ्वी के गुरुत्व बल का है तथा दूसरे मामले में चुम्बकीय बल का। सामान्य दोलक के दो स्थानों पर दोलन से हमें उन दो स्थानों पर गुरुत्व बल की तीव्रता का अनुपात पता चलता है, मान नहीं। इसी प्रकार से चुम्बकित सुई के मामले में भी हम दो स्थानों की चुम्बकीय तीव्रता का अनुपात ही निकाल सकते हैं। लिहाज़ा जब तक कि धरती के चुम्बकीय क्षेत्र की तीव्रता को परम राशि (Absolute Value) के रूप में व्यक्त करना संभव नहीं हुआ, तब तक अलग-अलग प्रेक्षकों के अवलोकनों या एक ही प्रेक्षक द्वारा अलग–अलग सुई से लिए गए अवलोकनों की तुलना संभव न थी। यह स्थिति काफी समय बाद सन् 1833 में बदली।

प्रारम्भिक चुम्बकीय सर्वेक्षण

यह अत्यंत रोचक बात है कि पहला व्यापक चुम्बकीय सर्वेक्षण सन् 1698 में एडमण्ड हैली ने किया था। यह पहला मौका था जब किसी सरकार ने खालिस वैज्ञानिक मकसद से की जा रही यात्रा को अनुदान दिया था। बदकिस्मती से हैली सिर्फ विचलन व नमन नापने की स्थिति में था। उसके पास तीव्रता की अवधारणा नहीं थी और यदि होती भी तो परम मान निकालने में असमर्थता के चलते उसके अवलोकन बेकाम ही रहते। हैली के प्रयास के लगभग सौ साल बाद सरकारी सहायता से दूसरे चुम्बकीय सर्वेक्षण का मौका आया। इस मर्तबा बोर्डा ने सन् 1785 में दो जहाज़ों से दक्षिण सागर की यात्रा की योजना बनाई। बदकिस्मती से ये दोनों जहाज़ गुम हो गए। किन्तु एक जहाज़ पर मौजूद एक अफसर ने हादसे से पूर्व लिए गए कुछ अवलोकन फ्रांसीसी विज्ञान अकादमी को भेजे। ये प्रथम आंकड़े थे जिनसे पता चलता था कि अक्षांश बढ़ने के साथ पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र की तीव्रता भी बढ़ती है। आज हम जानते हैं कि पृथ्वी के क्षेत्र की तीव्रता अपने अधिकतम बिन्दु पर न्यूनतम की अपेक्षा तीन गुना

ज़्यादा है। इन दो बिन्दुओं पर नमन कोण क्रमश: 87^0 और 8^0 हैं।

आजकल पृथ्वी के चुम्बकीय चार्ट तीन-तीन के समूह में होते हैं। पहले दो चार्ट समविचलन (आइसोगोनिक) व समनमन (आइसोक्लिनिक) रेखाओं के होते हैं तथा तीसरा चार्ट समतीव्रता (आइसोडायनेमिक) रेखाओं का होता है। इन तीनों नक्शों के आधार पर हम दुनिया के लगभग किसी भी बिन्दु पर धरती की चुम्बकीय स्थिति पता कर सकते हैं।

विचलन व नमन की तरह पृथ्वी के चुंबकीय क्षेत्र की तीव्रता भी निरंतर बदलती रहती है। प्राय: ये परिवर्तन धीमी गति से होते हैं किन्तु सन् 1722 से दैनिक व घण्टेवार परिवर्तनों का अस्तित्व भी पता चला है। इसके अलावा यकायक परिवर्तन भी होते हैं। कभी-कभी ये परिवर्तन बहुत तेज़ी से होते हैं और प्राय: (सदैव नहीं) इनका संबंध सूर्य के धब्बों व 'ऑरिरा बोरिएलिस"* से होता है। यह संबंध सन् 1740 से ज्ञात है।

भूचुंबकत्व: कारणों की खोज

पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र में होने वाले उतार-चढ़ाव पृथ्वी के बाहर होने वाली घटनाओं से उत्पन्न होते हैं, इस खोज ने पृथ्वी के चुम्बकत्व की उत्पत्ति की तलाश को नया जीवन दे दिया। इस संदर्भ में प्राचीन काल से चली आ रही एक परिकल्पना यह थी कि लोडस्टोन के पर्वत होते हैं। ईसा पूर्व द्वितीय सदी में यूनानी कवि और चिकित्सक 'कोलोफोन के निकेण्डर' ने इस मिथक को जन्म दिया कि चुम्बकीय पत्थर की खोज मैग्नस ने संयोगवश की थी। प्लाइनी ने प्रथम ईस्वी सदी में इसे अपनी पुस्तक 'नेचुरल हिस्ट्री' में स्थान दिया और इस कथा को और विस्तार दे दिया:

"सिंधु नदी के निकट दो पर्वत हैं; एक की प्रकृति लोहे को आकर्षित करने की है तथा दूसरे की विकर्षण की। अत: यदि जूते में कीलें लगी हों, तो एक पर्वत से पैर उठाया नहीं जा सकता और दूसरे पर पैर रखा नहीं जा सकता।"

एक सदी पश्चात् जब टोलेमी ने 'ज्यॉग्रफी' लिखी तब उसने प्रथम पर्वत को दक्षिण चीन के तट पर स्थित एक टापू में तब्दील कर दिया और कहा कि जिन जहाज़ों को कीलों से जोड़ा गया हो वे इस टापू की ओर खिंचकर चिपक जाते हैं। तेरहवीं सदी तक यह कथा और विस्तार पा चुकी थी। कथा

* उत्तर ध्रुवीय इलाकों में अक्सर आकाश में लाल-हरी रंग-बिरंगी रोशनियां दिखती हैं जिन्हें ऑरिरा बोरिएलिस या उत्तर ध्रुवीय प्रकाश कहते हैं। दक्षिणी ध्रुवीय इलाकों में भी ऐसा ही प्रकाश दिखता है जिसे 'ऑरिरा ओस्ट्रेलिस' कहते हैं।

के नए संस्करण में इस टापू को भूमध्य सागर में सरका दिया गया और इसे एक जलमग्न पर्वत का रूप दे दिया गया। इस पर्वत में ऐसी क्षमता थी कि यह पास से गुज़रते जहाज़ों की सारी कीलें खींच लेता था, जिससे जहाज़ के अस्थि पंजर खुल जाते थे। अपने विकास के दौरान किसी वक्त यह कथा 'अरेबियन नाइट्स' में स्थान पा गई, जो वाकई इसका सही स्थान था।

परन्तु, इस दरम्यान चुम्बकीय टापू की कथा ने वैज्ञानिक साहित्य पर भी गहरा प्रभाव छोड़ा। चुम्बकीय सुई के रुकने की दिशा की व्याख्या में यह उपयोगी हो सकती थी। लिहाज़ा चुम्बकीय भण्डारों को एक बार फिर सरकाया गया — इस बार उन्हें सरकाकर ग्रीनलैण्ड के उत्तर में स्थित किसी जगह पर भेज दिया गया।

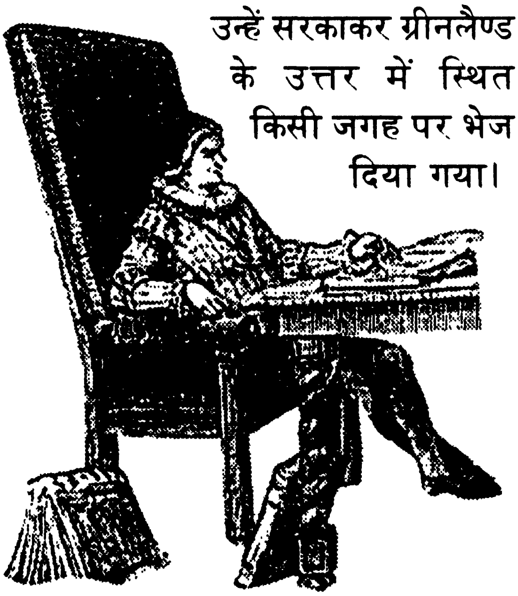

विलियम गिल्बर्ट: गिल्बर्ट ने चुंबक को लेकर काफी सारे प्रयोग किए और धरती के चुंबकत्व को लेकर परिकल्पना पेश की।

अलबत्ता, जब सोलहवीं सदी में यह साफ हो गया कि चुम्बकीय सुई के व्यवहार की व्याख्या हेतु चुम्बकीय पदार्थ का जितना भण्डार ज़रूरी होगा वह धरती के कुल आयतन का एक बड़ा भाग होगा, तभी जाकर नए सिद्धांत की तलाश की तलब शुरू हुई। यह नया सिद्धांत विलियम गिल्बर्ट ने सन् 1600 में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *'डी मेग्नेट'* में प्रतिपादित किया।

गिल्बर्ट की किताब, डी मेग्नेट

'विलियम गिल्बर्ट' को बहुधा 'चुम्बकत्व का जनक' कहा जाता है। यह संज्ञा शायद इस अर्थ में सही है कि उसने तब तक संकलित चुम्बकत्व संबंधी समस्त ज्ञान में से सत्यापन योग्य ज्ञान को अगली पीढ़ी को सौंपने का अहम काम किया था। उसे आमतौर पर जितना श्रेय दिया जाता है, उसका वास्तविक वैज्ञानिक योगदान उससे कम भी है और ज़्यादा भी। कम इस मायने में कि, हालांकि वह मौलिकता में किसी से पीछे न था किन्तु चुम्बकत्व के ज्ञान में उसका प्रमुख योगदान एक वैज्ञानिक खोजकर्त्ता के रूप में कम और एक विश्वकोश निर्माता के रूप में ज़्यादा था। ज़्यादा इस अर्थ में कि उसने आधुनिक विज्ञान की संपूर्ण भावना में ग्रंथ लिखने में गैलीलियो को पूरा एक पीढ़ी पीछे छोड़ दिया था।

पेरेग्राइन की ही तरह गिल्बर्ट ने

भी लोडस्टोन को एक गोले का आकार दिया। इसे वह टेरेला (छोटी धरती) कहता था। अलबत्ता पेरेग्राइन के विपरीत गिल्बर्ट अपने गोले के चुम्बकीय गुणों को धरती के चुम्बकीय गुणों के सदृश मानता था। पेरेग्राइन की ही तरह गिल्बर्ट ने भी लोडस्टोन गोले के विभिन्न बिन्दुओं पर चुम्बकीय सुई का नमन देखा – ध्रुवों पर त्रिज्या की दिशा में, मध्य रेखा पर स्पर्श रेखा के समान्तर व अन्य बिन्दुओं पर इनके बीच। गिल्बर्ट को, अलबत्ता, यह जानकारी भी थी कि धरती के समकक्ष बिन्दुओं पर भी चुम्बकीय सुई लगभग इसी तरह व्यवहार करती है। लिहाज़ा गिल्बर्ट इस स्थिति में था कि इन दो के बीच समानता स्थापित कर सके। पेरेग्राइन को यह जानकारी उपलब्ध न थी।

पार्थिव चुम्बकत्व और गिल्बर्ट

उक्त सादृश्य (Analogy) एक बड़ा योगदान था। पृथ्वी को एक विशाल चुम्बक मानने का विचार आज इतना जाना-माना है कि संभवत: हम यह न समझ पाएं कि पहली बार इस विचार के प्रस्तुत होने का क्या महत्व रहा होगा। यह विचार इतना स्वाभाविक और सरल लगता है फिर भी दो हज़ार बरसों तक चुम्बक की क्रिया के इर्द-गिर्द जो अटकल बाज़ी चली उसमें शायद गिल्बर्ट से पहले

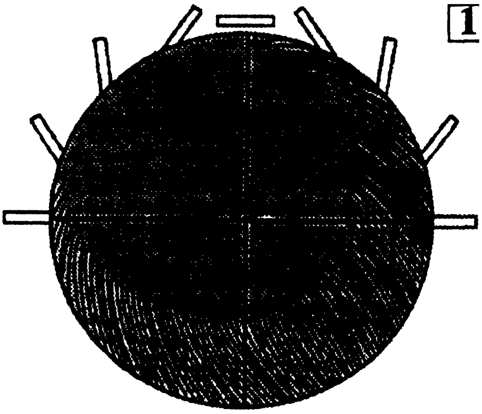

1

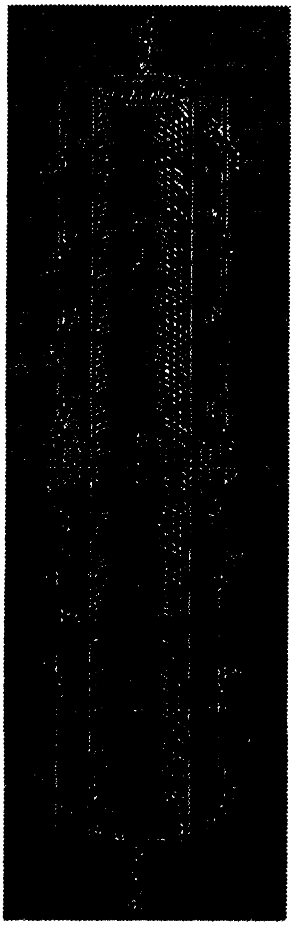

3

1. **छोटी धरती:** धरती के चुंबकीय गुणों को समझने के लिए गिल्बर्ट ने लोड स्टोन को गोलाकार बनाया। इस गोले को उसने टेरेला (छोटी धरती) कहा। उसने इस गोले पर विभिन्न बिन्दुओं पर चुंबकीय सुई के झुकाव को देखा और पाया कि धरती का चुंबकत्व भी सुई के साथ ऐसा ही व्यवहार करता है।

2. **छड़ चुंबक का चुंबकीय क्षेत्र:** गिल्बर्ट पहला व्यक्ति था जिसने किसी छड़ चुंबक के चुंबकीय क्षेत्र का रेखाचित्र प्रस्तुत किया। यह चित्र उसकी पुस्तक 'डी मेग्नेट' से लिया गया है। भौगोलिक उत्तरी ध्रुव से चुंबकीय सुई के विचलन की व्याख्या करते हुए उसने यह रेखाचित्र प्रस्तुत किया था।

3. **चुंबकित करना:** किसी लोहे के टुकड़े को चुंबकित करने के तरीके का ब्यौरा देते हुए गिल्बर्ट ने बताया कि गर्म करके, पीटते हुए ठंडा करते समय यदि लोहे को चुंबकीय उत्तर या दक्षिण के समान्तर रखें तो लोहे में चुंबकीय गुण आ जाते हैं। यहां लोहे को चुंबकित करने का एक दृश्य, गिल्बर्ट की किताब से।

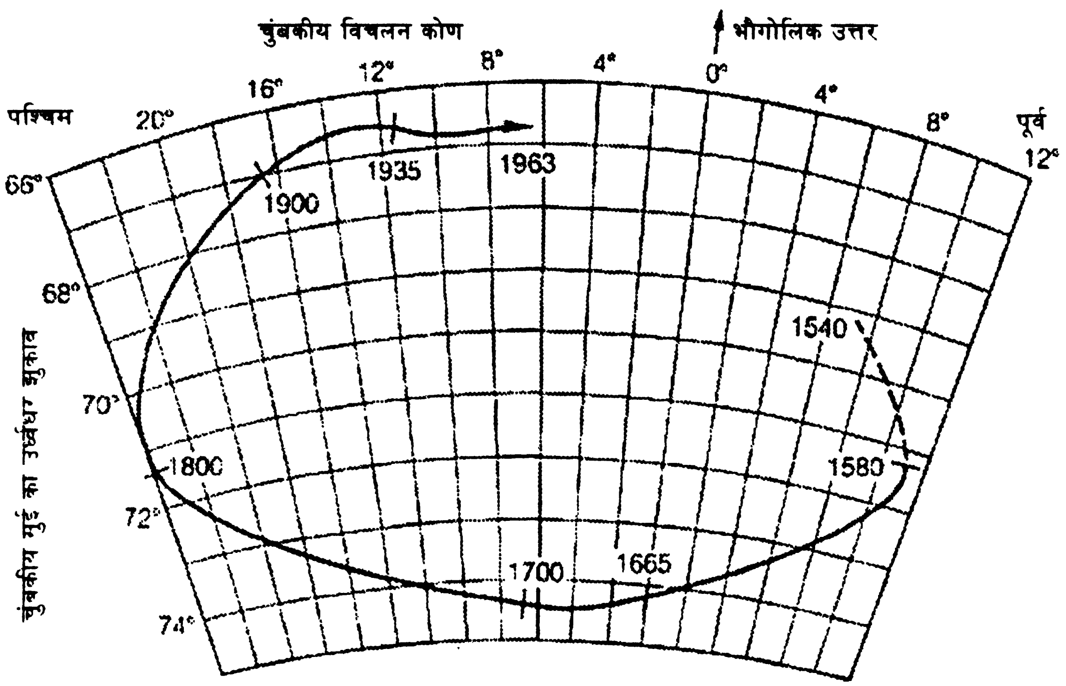

चुंबकीय विचलन और झुकाव का ब्यौरा: लंदन में सन् 1540 से चुंबकीय विचलन और चुंबकीय नमन कोण में आए बदलावों को रिकॉर्ड किया गया है। सन् 1540 में विचलन 7 डिग्री पूर्व की ओर था और नमन कोण लगभग 69 डिग्री था। इसके बाद इसमें लगातार बदलाव होता दिखता है। सन् 1700 में विचलन 6 डिग्री पश्चिम की ओर था और नमन कोण लगभग 74 डिग्री था और सन् 1963 में विचलन 6 डिग्री पश्चिम में था और नमन कोण लगभग 67 डिग्री था।

किसी को यह ख़्याल तक नहीं आया कि दिशासूचक जिस ढंग से घूमता है वह इसलिए है कि पृथ्वी खुद एक चुम्बक है।

मगर बदकिस्मती से गिल्बर्ट ने मामले का ज़रा अतिसरलीकरण कर दिया। उसने कल्पना की कि पृथ्वी 'टेरीन पदार्थ' से बनी है जो लोडस्टोन की ही फितरत रखता है। इस कल्पना के मुताबिक हवा-पानी झेलते-झेलते पृथ्वी के अधिकांश खुले भाग से यह गुण लुप्त हो गया है जबकि अंदरूनी भाग अभी भी 'आदि रूप' में है। पृथ्वी को एक विशाल चुम्बक निरुपित करती यह अवधारणा वैज्ञानिक सोच में एक वास्तविक योगदान था हालांकि आज हम इसके आधार पर पृथ्वी के संघटन की व्याख्या नहीं करते। पृथ्वी के क्षेत्र में उतार-चढ़ाव का तथ्य गिल्बर्ट के सिद्धांत को चुनौती देता था। गिल्बर्ट

ने इस तथ्य को ही अस्वीकार कर दिया, हालांकि उसके सामने इसके स्पष्ट प्रमाण थे। भौगोलिक उत्तर से चुंबकीय सुई के विचलन की व्याख्या करते हुए गिल्बर्ट ने एक छड़ चुंबक के चुम्बकीय क्षेत्र का प्रथम रेखाचित्र प्रस्तुत किया था।

गिल्बर्ट ने कॉपर्निकस द्वारा प्रस्तुत घूमती पृथ्वी की अवधारणा को अपनाया जबकि उस जमाने में ऐसा करना खतरे से खाली न था। गिल्बर्ट ने इस अवधारणा को अपने नए सिद्धांत का सहारा दिया और कहा कि पृथ्वी का घूर्णन तथा चुम्बकत्व संबंधित हैं तथा चुम्बकत्व के कारण ही पृथ्वी घूमती है। केपलर ने इस सुराग को पकड़ा और इसका विस्तार किया एवं इसके आधार पर सूरज के इर्द-गिर्द ग्रहों की परिक्रमा की व्याख्या कर दी।

गिल्बर्ट ने यह भी दर्शाया कि जब लोहे की एक छड़ को गर्म करके चुम्बकीय ध्रुववृत्त के समान्तर रखकर ठण्डा करते वक्त पीटा जाता है तो वह चुम्बकित हो जाती है।

गिल्बर्ट बहुत मेहनती था और एक बार कोई काम शुरू करने पर किसी कीमत पर रुकता नहीं था। एक बार उसने 75 हीरे प्राप्त किए सिर्फ उस प्राचीन विश्वास की जांच करने के लिए – जिसके अनुसार हीरा चुम्बकीय पदार्थों का चुम्बकत्व नष्ट कर देता है।

अपनी कर्मठता पर उसने स्वयं यह टिप्पणी की थी:

"परंतु यदि किसी को यहां व्यक्त मत सहमति के योग्य न लगें और वे मेरे कुछ विचित्र विचारों को स्वीकार न करना चाहें, तो भी वे उन अनगिनत प्रयोगों और खोजों – जिनके आधार पर दर्शन मूलत: फलता-फूलता है – पर ध्यान दें; और हमने इन्हें बहुत तकलीफों व रतजगों और बहुत पैसा खर्च करके खोजा है तथा प्रदर्शित किया है। .....इस किताब में एक भी बात ऐसी नहीं है जिसकी छानबीन न की गई हो और जिसे हमारी अपनी आंखों के सामने बार-बार करके दोहराया न गया हो।"

गिल्बर्ट की मौलिकता शायद इसलिए ज़्यादा फलदायी रही क्योंकि यह विषयवस्तु की नहीं बल्कि विधि की मौलिकता थी। उस समय के लिहाज़ से यह महत्वपूर्ण बात थी। उसने अपने पूर्ववर्तियों के अथक परिश्रम का पूरा लाभ उठाया मगर लगभग हर चीज़ को प्रायोगिक जांच की कसौटी पर परखा।

यदि हम गिल्बर्ट की गलतफहमियों के प्रति संवेदनशील रुख अपनाएं, जो शायद उसके ज़माने को देखते हुए अनिवार्य भी है, तो चुम्बकत्व के हमारे आधुनिक ज्ञान का जनक होने का उसका रुतबा गलत नहीं लगता। इसके बाद भी हम गिल्बर्ट से पूर्ववर्ती

चुंबकीय दिक्सूचक: चीन में हॉन राजाओं के समय में इस्तेमाल किया जाने वाला एक प्राचीन दिक्सूचक। मैग्नेटाइट (लोडस्टोन) को चम्मच की शक्ल देकर उसे एक बोर्ड पर रखा जाता था। इस बोर्ड पर चम्मच स्वतंत्र रूप से घूम सकता था और दिशासूचक का काम करता था।

खोजियों को पूर्ववर्ती जनक कह ही सकते हैं। साथ ही यह भी नहीं भूलना चाहिए कि गिल्बर्ट ने पृथ्वी के चुम्बकत्व की उत्पत्ति संबंधी जो सिद्धांत दिया था, वह अस्वीकार्य साबित हो चुका है।

पृथ्वी का चुम्बकत्व : एक पहेली

इस लेख का समापन पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र की उत्पत्ति की वास्तविक व्याख्या के साथ होना चाहिए। बदकिस्मती से यह मुमकिन नहीं है। शायद विज्ञान इसी तरह चलता है। इस विषय में आज तक की उपलब्धि यह है कि हमारे पास बारीक अवलोकन व मापन हैं जो पिछले पांच सौ सालों में एकत्रित हुए हैं। इसके अलावा पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र की व्याख्या में दो किस्म के प्रयासों को वैज्ञानिक तरजीह मिल रही है। एक है कि इसका श्रेय पृथ्वी के अंदर मौजूद एक या एक से ज़्यादा विशाल मगर काल्पनिक चुम्बकों को दे दिया जाए। पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र के अनुरूप इन काल्पनिक चुम्बकों के आकार, स्थिति, तीव्रता आदि की गणना का काम सिद्धांतकारों के लिए संतोषप्रद जुगाली का सबब बना हुआ है। ऐसे चुम्बकों के भौतिक अस्तित्व की असंभवता तथा साथ में पृथ्वी के चुम्बकत्व में होने वाले आवर्ती उतार-चढ़ावों के चलते इस सिद्धांत की हवा निकलती दिख रही है।

दूसरा प्रयास ऐसा है जो भौतिक रूप से ज़्यादा यथार्थवादी किन्तु गणितीय दृष्टि से पेचीदा लगता है। सरल रूप से इसे ऐसे बयान किया जा सकता है। चुम्बकीय क्षेत्र प्रायः विद्युत धारा के परिणाम होते हैं। विद्युत धारा मात्र विद्युत आवेशों की गति का नाम है। यह पता है कि वायुमंडल अत्यंत आवेशित है तथा पृथ्वी के साथ घूमता है। समस्या यह है कि वायुमंडल में आवेश की मात्रा तथा वितरण का

निर्धारण करना जो पृथ्वी के चुम्बकत्व की व्याख्या कर सकेगा। इसके बाद यह देखना होगा कि क्या इसका प्रायोगिक सत्यापन किया जा सकता है।

इतना तो स्पष्ट हो ही गया होगा कि इस विषय में अभी हम उस स्थिति तक नहीं पहुंचे हैं कि व्यापक संश्लेषण के द्वारा आगे का रास्ता खुलने की गुंजाइश बने, जबकि कई अन्य विषयों में उम्मीद की वजह बन चुकी है। जब यह व्यापक संश्लेषण होगा तब समस्त संकलित जानकारी बेशक काम आएगी और हम सोचेंगे कि और जानकारी होती तो अच्छा था। तब तक हम एडमण्ड हैली के शब्दों को दोहरा सकते हैं कि ये वे रहस्य हैं जो अब तक मानव जाति को अज्ञात हैं और भविष्य के उद्यम के लिए आरक्षित हैं।

लॉयड विलियम टेलर व फोरेस्ट ग्लेन टकर द्वारा सर्वप्रथम यह लेख 'फिज़िक्स द पायोनियर साइंस' में 1944 में प्रकाशित किया गया। मौजूदा लेख टचस्टोन पब्लिशिंग कंपनी द्वारा 1972 में प्रकाशित 'रियल्म ऑफ साइंस' के खंड 8 से साभार अनुदित।

अनुवाद: सुशील जोशी। एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम और स्रोत फीचर सेवा मे जुड़े हैं। इसके अलावा स्वतंत्र लेखन तथा अनुवाद भी करते हैं।

धरती के चुंबकत्व की उत्पत्ति

इस लेख में आपने चुंबकत्व को लेकर इंसानी समझ में आए बदलावों को पढ़ा। यह लेख 55 साल पहले लिखा गया था; धरती के चुंबकत्व के बारे में इसमें जो परिकल्पना प्रस्तुत की गई थी वह आज सुनने को भी नहीं मिलती। आज इस चुंबकत्व की व्याख्या करने के लिए और बहुत-सी परिकल्पनाएं प्रस्तुत की जाती हैं, परन्तु धरती के चुंबकत्व को लेकर अभी भी हमारी समझ बहुत अधूरी है। फिर भी यह जानना तो ज़रूरी है ही कि ये प्रचलित अवधारणाएं क्या हैं, और उनके पीछे क्या तर्क हैं।

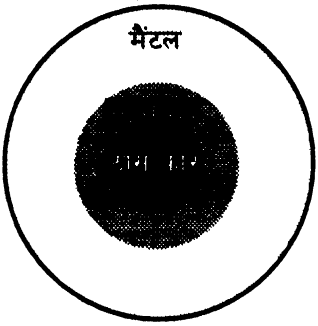

अब यह माना जाता है कि पृथ्वी का चुंबकत्व उसकी अंदरूनी संरचना की वजह से है। परन्तु यह भी साफ है कि धरती की भीतरी संरचना को ध्यान से देखें तो इसके केन्द्र से होकर गुज़रते हुए किसी विशाल छड़ चुंबक की मौजूदगी का कोई आसार नज़र नहीं आता जैसी कि पहले परिकल्पना की गई थी। धरती की ऊपरी परत जिसे क्रस्ट कहा जाता है, इसके बाद 3000 किलोमीटर मोटाई वाली चट्टानी परत है जिसे मैंटल कहा जाता है, और फिर उसके बाद लगभग 3000 किलोमीटर मोटाई वाला धरती का केन्द्रीय भाग है जिसे कोर

कहा जाता है। कोर का बाहरी हिस्सा तरल अवस्था में है तथा बीच का भाग ठोस है। भीतरी ठोस कोर मुख्य रूप से लोहे-निकल से बना हुआ है ऐसा प्रतीत होता है।

अधिकांश भूवैज्ञानिकों का मानना है कि तरल कोर में मौजूद आवेशित कणों की गतिशीलता के कारण ही धरती का चुंबकत्व बना हुआ है। ये आवेशित कण विद्युत धारा उत्पन्न करते हैं, और ये विद्युत धाराएं अपने इर्द-गिर्द एक चुंबकीय क्षेत्र को जन्म देती हैं। तरल कोर में कणों की गतिशीलता बनी रहती है फलस्वरूप विद्युत धारा की निरंतरता और चुंबकीय क्षेत्र का बना रहना संभव हो पाता है। अब यह सवाल ज़रूर सामने आता है कि तरल कोर में आवेशित कणों की गतिशीलता को बनाए रखने वाला बल आखिर कहां से आता है?

एक विचार है कि तरल कोर में विद्युत धाराएं बनने का प्रमुख कारण है धरती का अपने अक्ष पर घूमना। इस अक्षीय गति के कारण ही तरल कोर में गतिशीलता बनी रहती है। इस विचार के पक्ष में कई सारे तथ्य सामने आए हैं। जैसे बृहस्पति ग्रह अपने अक्ष पर तेज़ी से घूमते हुए 10 घंटे में एक चक्कर पूरा करता है और उसका चुंबकीय क्षेत्र धरती के मुकाबले ज़्यादा शक्तिशाली है। चांद अपने अक्ष पर एक पूरा चक्कर लगभग 28 दिन में पूरा करता है और उसका चुंबकीय क्षेत्र काफी कमज़ोर है। शुक्र अपने अक्ष पर बहुत ही धीमी गति से घूमता है और उसका चुंबकीय क्षेत्र भी बेहद कमज़ोर है। यानी जो पिंड अपने अक्ष पर जितनी तेज़ी से घूमेगा, उसका चुंबकीय क्षेत्र उतना ही शक्तिशाली होगा।

धरती के चुंबकत्व के लिए एक और संभावना है – तरल कोर में बहने वाली संवहन धाराएं। (जैसे पानी को गरम करते समय पानी में नीचे से ऊपर, ऊपर से नीचे संवहन धाराएं चलती हैं।) ठोस कोर से चलने वाली उष्मा तरल कोर में मौजूद आयनों, इलेक्ट्रॉनों को ऊपर-नीचे लाने, ले जाने का काम करती है; फलस्वरूप तरल पदार्थ चुंबकीय क्षेत्र का निर्माण करता है। यह भी संभव है कि धरती की अक्षीय गति और संवहन धाराएं मिलकर चुंबकीय क्षेत्र बनाते हों।

बहरहाल, अभी भी हम किसी ठोस निष्कर्ष पर नहीं पहुंच सके हैं। इसलिए भी क्योंकि हमारी धरती का चुंबकत्व बहुत से अजीबो-गरीब कारनामे भी दिखाता है। अगर धरती का इतिहास उठाकर देखें तो पता चलता है कि धरती का चुंबकत्व काफी अस्थिर है। पृथ्वी के चुंबकीय ध्रुव कुछ हज़ार या लाख साल के अंतराल के बाद पलट जाते हैं यानी जहां उत्तर ध्रुव था वहां दक्षिण ध्रुव और जहां दक्षिण ध्रुव था वहां उत्तर ध्रुव बन जाता है। इतना ही नहीं पलटने से पहले चुंबकीय क्षेत्र काफी कमज़ोर हो जाता है और ध्रुव इधर -उधर भटकने लगते हैं। ये सब क्यों होता है इसके जवाब की तलाश अभी भी जारी है।

– माधव केलकर

धरती के चुंबकीय क्षेत्र से संबधित और जानकारी के लिए संदर्भ के अंक 16, मार्च-अप्रैल 1997 में प्रकाशित लेख 'धरती के चुंबक का असर' देखिए।

हवा का दबाव

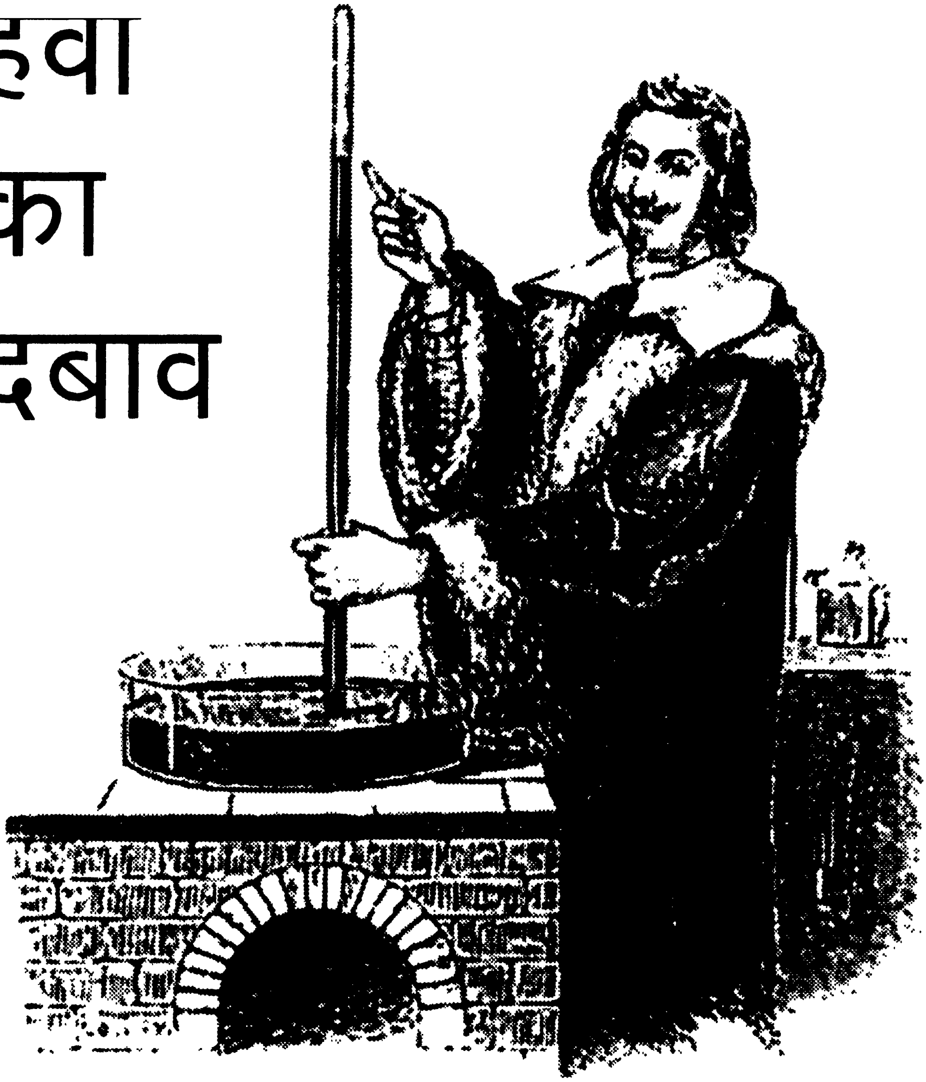

अमिताभ मुखर्जी

हम हवा के एक विशाल समुद्र के नीचे रहते हैं। ऊपर की ओर कई किलोमीटर तक वायुमंडल फैला हुआ है। सिर्फ ऊपर ही नहीं, चारों ओर फैली हुई है हवा। जहां भी इसे रास्ता मिलता है, यह घुस आती है। (यही है तरलता का गुण)। इस समुद्र की तह पर रहने के कारण इसका भार हम पर दबाव डालता है। द्रवों की तरह गैसों का दबाव भी निम्न सूत्र से मिलता है:

दबाव = ऊंचाई × घनत्व

कितना है यह दबाव? एक वर्ग सेंटीमीटर पर एक किलोग्राम का वज़न रखने से जितना दबाव उत्पन्न होता है, लगभग उतना। एक वर्ग सेंटीमीटर पर खड़ा हवा का 'स्तम्भ' कई किलोमीटर ऊंचा है, पर हवा का घनत्व पानी के घनत्व से बहुत कम है। एक वर्ग सेंटीमीटर पर खड़ा एक किलोग्राम वज़न का पानी का स्तम्भ कितना ऊंचा होगा?

एक घन सेमी. पानी का वज़न = 1 ग्राम

यानी, स्तम्भ के एक सेंटीमीटर का भार 1 ग्राम है। अत: 1 किलो भार डालने के लिए चाहिए 1000 सेंटीमीटर यानी 10 मीटर ऊंचा पानी का स्तम्भ।

ऊपर बताया गया पानी का स्तम्भ काल्पनिक था। इसको वास्तव में बनाने का प्रयोग इटालीय वैज्ञानिक तोर्रिचेल्ली ने पहली बार किया। उन्होंने एक बहुत लम्बी कांच की नली बनाई, जो एक तरफ से बन्द थी। नली को पानी से भरकर उसको पानी भरे टब में उलटा खड़ा कर दिया, यानी नली का सील किया हुआ सिरा ऊपर की तरफ। नली को पानी के टब में डालकर नीचे की टोटी खोल देने पर पानी का स्तर गिरने लगा और तब रुका जब उसकी ऊंचाई 10 मीटर थी

वायुमण्डलीय दबाव

ऐसा क्यों होता है? इसे समझने के लिए चित्र-1 को देखते हैं। हम तीन बिन्दु चुनेंगे और उन पर दबाव निकालेंगे। पहला बिन्दु 'च' नली में पानी की ऊपरी सतह पर है। इसके ऊपर वाले हिस्से में हवा नहीं है, क्योंकि हवा के वहां पहुंचने का कोई रास्ता नहीं है। यानी यह स्थान 'वायुरहित' है। सत्रहवीं सदी में लोग इसे 'तोर्रिचेल्ली का खालीपन' कहते थे, आधुनिक नाम है 'निर्वात'। हवा नहीं इसलिए कोई दबाव भी नहीं है।

अत: 'च' पर दबाव = 0

अब बिन्दु 'छ' को देखिए, जो नली के अंदर और टब के पानी की सतह के स्तर पर है। इस पर दबाव डाल रहा है नली में स्थित पानी। अत:

'छ' पर दबाव = 10 मी. पानी का दबाव

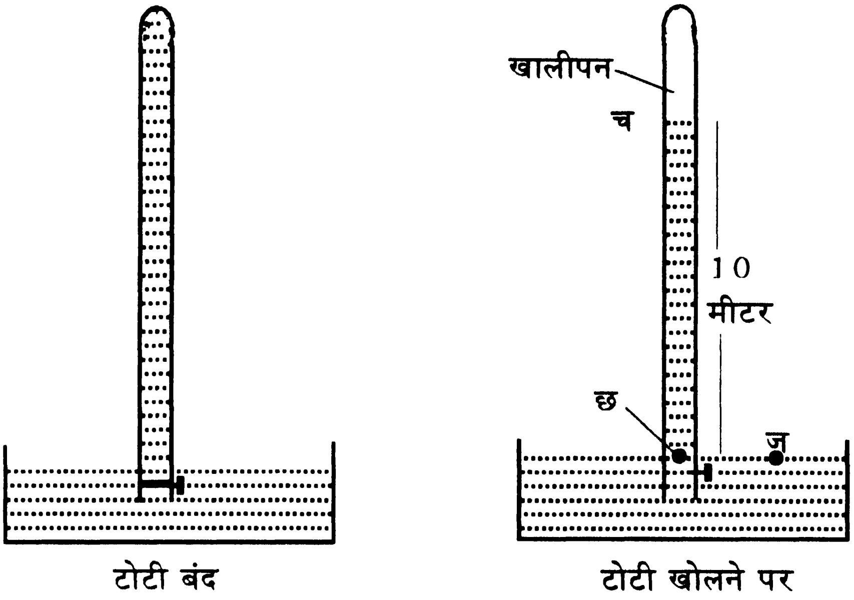

चित्र-1

सूत्र के अनुसार:

10 मीटर पानी का दबाव

= 10 मीटर × 1 ग्राम/घन सेंटीमीटर

= 1000 से.मी. × 1 ग्राम/घन से.मी.

= 1000 ग्राम /वर्ग से.मी.

= 1 कि.ग्रा/वर्ग से.मी.

अंत में बिन्दु 'ज' को लेते हैं, जो नली के बाहर, टब के पानी की सतह पर है। इस पर दबाव है केवल वायुमण्डल का। अत:

'ज' पर दबाव = वायुमण्डल का दबाव

स्थिर स्थिति में (जब पानी न चढ़ रहा है, न गिर रहा है) 'छ' और 'ज' पर दबाव बराबर होंगे। अगर नहीं होते, तो जहां दबाव अधिक है वहां से पानी दूसरी तरफ भागता। (यही है तरलता) अत: हम पाते हैं:

वायुमण्डलीय दबाव

= 1 किलोमीटर/वर्ग सेंटीमीटर

10 मीटर लम्बी कांच की नली से प्रयोग करना कठिन भी है और खतरनाक भी। पानी की जगह हम तोर्रिचेल्ली का प्रयोग 'पारे' से कर सकते हैं। पारे का घनत्व पानी से लगभग 13.6 गुना अधिक है। अत: वायुमण्डल के दबाव की बराबरी करने वाला पारे का स्तम्भ लगभग 76 से.मी. होगा। पारे से भरी हुई नली का मुंह अंगूठे से या गत्ते से बन्द करके उसको चौड़े बर्तन में भरे पारे की सतह के नीचे ले जाकर खोल दें,

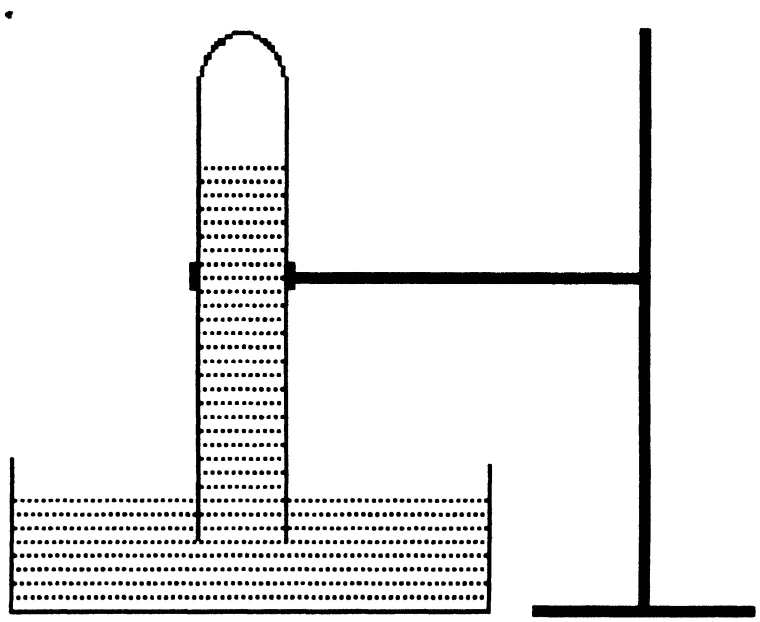

वायुदाबमापी या बैरोमीटर

चित्र-2

तो टोटी की कोई ज़रूरत नहीं। यह है वायुदाबमापी या बैरोमीटर।

किस्मत की हवा-कभी नरम कभी गरम

वैसे तो हमने कह दिया "वायुमण्डल का दबाव लगभग 1 किलोमीटर/वर्ग सेंटीमीटर होता है, जो लगभग 76 सेंटीमीटर ऊंचे पारे के स्तम्भ के दबाव के बराबर है।" पर वास्तव में धरती पर हवा का दबाव हर जगह पर एक-सा नहीं होता। अगर हम शिमला, मसूरी जैसी किसी पहाड़ी जगह पर जाएं, तो हम होशंगाबाद से लगभग 2000 मीटर अधिक ऊंचाई पर होंगे। यानी हवा का जो स्तम्भ हमें दबा रहा है, उसकी ऊंचाई इतनी ही कम होगी। अतः ऐसी जगह पर हवा का दबाव कम होगा। (देखिए चित्र-3)

क: हवा का दबाव 'ग' से कम

ख: हवा का दबाव 'ग' से अधिक

अगर हम अपने वायुदाबमापी यन्त्र (बैरोमीटर) को उठाकर 'ग' से पहाड़ पर स्थित 'क' पर ले जाएं, तो दबाव दर्शाने वाले पारे के स्तम्भ की ऊंचाई कम हो जाएगी। इसी तरह अगर हम उसे खदान में स्थित 'ख' पर ले जाएं, तो स्तम्भ की ऊंचाई अधिक होगी। यानी 'ग' की तुलना में 'क' पर हवा का दबाव कम है और 'ख' पर अधिक है। केवल पहाड़ी इलाकों में नहीं, बहुत

ऊंची इमारतों पर भी बैरोमीटर दबाव में थोड़ा बहुत अन्तर दिख सकता है।

यह तो हुआ एक जगह से दूसरी जगह जाने पर हवा के दबाव का बदलना। पर एक ही जगह पर समय के साथ वायुमण्डलीय दबाव घटता-बढ़ता है। टी.वी. या अख़बारों में आपने देखा या सुना होगा – "बंगाल की खाड़ी के ऊपर (या पश्चिमी राजस्थान में) कम दबाव का क्षेत्र बना हुआ है। इसके पश्चिमोत्तर दिशा में (या पूरब दिशा में) चलने की सम्भावना है।" ज़ाहिर है कि जब यह क्षेत्र खाड़ी से उड़ीसा/आन्ध्रप्रदेश तट की ओर जाता है, तो वहां हवा का दबाव कम हो जाता है। तट पर अगर वायुदाबमापी लगाकर बार-बार अवलोकन लेते रहें, तो हम देखेंगे कि उसी जगह पर कुछ समय बाद पारे के स्तम्भ की ऊंचाई कम हो जाएगी।

76 सेंटीमीटर पारे के स्तम्भ को, जो कि वायुमंडल के औसत दबाव को दर्शाता है, वायुमंडलीय दबाव की मानक इकाई माना गया है। इसको 1 बार कहते हैं। दबाव में घट-बढ़ आम तौर पर 3-4 प्रतिशत से ज़्यादा नहीं होती। अतः दबाव के परिवर्तन को मापने के लिए हमें एक छोटी इकाई चाहिए। यह है मिलीबार या मि.बा.।

1 बार = 1000 मिलीबार

***प्रश्न:** किसी जगह पर बैरोमीटर का पारा थोड़े ही समय में 19 मि.मी. गिर गया। वहां हवा का दबाव कितने मिलीबार कम हुआ?*

अक्सर कम दबाव खराब मौसम का सूचक होता है। अगर बैरोमीटर का पारा यकायक गिर जाए, तो समझ सकते हैं कि तूफ़ान आने वाला है। अब इस यन्त्र की उपयोगिता सामने

चित्र-3

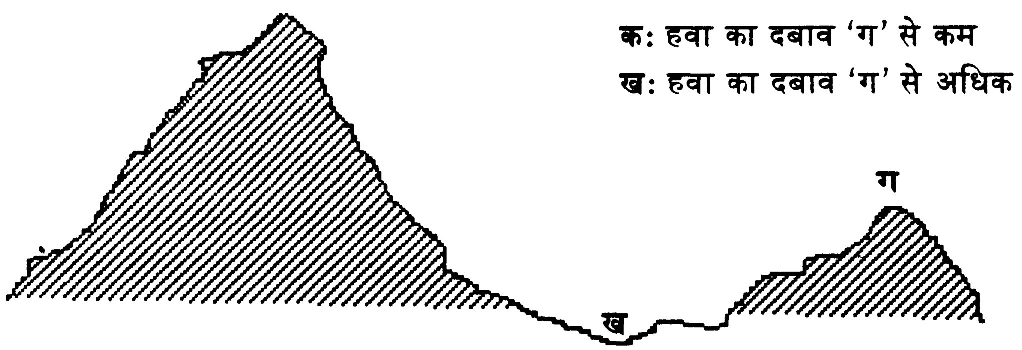

आई। बैरोमीटर हमें आने वाले तूफान का पूर्व संकेत देता है, जिससे हम बचाव के लिए कदम उठा सकते हैं।

अब आप पूछ सकते हैं कि वायुमण्डल का दबाव कम होने से मौसम खराब होने का यह संबंध कहां से आया? हमने अब तक हवा के दबाव के बारे में जो बातें कहीं, क्या उनके आधार पर यह समझा जा सकता है? यों तो मौसम के कई पहलू हैं, जैसे तापमान, हवा में नमी की मात्रा, बादलों का बनना (देखिए संदर्भ का अंक 19) इत्यादि। इसलिए मसला कुछ जटिल है। पर इन सब के अलावा एक मोटी बात है हवा का बहना। आइए इस पर ज़रा गौर करें।

दबाव और बहाव

हमने पहले ही देखा है कि द्रवों और गैसों में तरलता अर्थात् बहने की प्रवृत्ति होती है। इन्हें एक तरफ से दबाया जाए तो ये दूसरी तरफ भागते हैं। इसको एक नियम के रूप में लिखा जा सकता है: द्रवों और गैसों की एक सहज सी प्रवृत्ति होती है:

अधिक दबाव से कम दबाव की तरफ बहना।

यदि रास्ता मिले तो ये तरल पदार्थ अधिक दबाव से कम दबाव की तरफ बहने लगते हैं।

किसी साइकिल की ट्यूब में या फुलाए हुए फुग्गे (गुब्बारे) में छेद हो जाए तो हवा निकल जाती है यह तो हम सब ने देखा है। यह ऊपर दिए गए नियम का उदाहरण है। ट्यूब में पम्प से हवा भरी जाती है। उसका दबाव वायुमण्डल के दबाव से ज़्यादा होता है। इसलिए उसकी प्रवृत्ति होती है बाहर (कम दबाव के क्षेत्र में) आने की। छेद हो जाए या वाल्व की टोटी खोल दी जाए तो उसे रास्ता मिल जाता है और वह बाहर आ जाती है। फुग्गे के साथ भी यही होता है। अधिक दबाव बनाए रखने के लिए उसे धागे से बांधना पड़ता है। धागा खुल जाए तो हवा बाहर आ जाती है।

इससे जुड़ा हुआ एक रोचक प्रयोग है। इसके लिए चाहिए एक कांच की बोतल, उसमें लगने वाला दो छेदी कॉर्क, दो कांच की नलियां और एक फुग्गा। कांच की नली की जगह सोड़ा पीने की नली (स्ट्रॉ) से भी काम चल सकता है। फुग्गे को एक नली के सिरे पर बांध कर दोनों नलियों को कॉर्क में पिरो दीजिए। फिर कॉर्क को बोतल के मुंह में फिट कर दीजिए। लाख या मोम से कॉर्क को इस तरह सील कर दीजिए, जिससे नलियों के अलावा हवा के आने-जाने का कोई रास्ता न हो। इस स्थिति में बोतल के अन्दर और बाहर का दबाव बराबर है क्योंकि दबाव को बढ़ाने या घटाने वाली कोई क्रिया नहीं की गई है। अब जिस नली

कुछ सवाल

संदर्भ के अंक 26 में हवा के दबाव से जुड़े कुछ सवाल पूछे गए थे। एक बार फिर याद ताज़ा करने के लिए सवालों को यहां दोहराया जा रहा है। अगर आपने उस समय इनके बारे में न सोचा हो तो इस लेख को पढ़ने के बाद इन सवालों के जवाब सोचिए और हमें लिख भेजिए।

पहला सवाल: चित्र में दो एक समान बोतल दर्शाई गई हैं। एक में कॉर्क लगा है व दूसरी खुली है। तो हवा का दबाव

(अ) दोनों में बराबर है

(ब) बोतल 'क' में ज़्यादा है

(स) बोतल 'ख' में ज़्यादा है

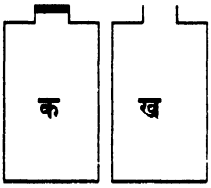

दूसरा सवाल. नीचे चित्र में दो बीकर दिखाए गए हैं। एक सीधा रखा हुआ है व दूसरा उल्टा रखा है। तो हवा का दबाव

(अ) बीकर 'क' में ज़्यादा है

(ब) बीकर 'ख' में ज़्यादा है

(स) दोनों में बराबर है

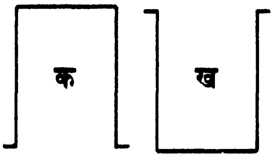

तीसरा सवाल: एक ढक्कन बंद इंजेक्शन की शीशी तथा एक ढक्कन बंद ग्लूकोज़ की बोतल में – हवा का दबाव

(अ) दोनों में बराबर है

(ब) ग्लूकोज़ की बोतल में ज़्यादा है

(स) इंजेक्शन की शीशी में ज़्यादा है

चौथा सवाल: चित्र में दर्शाई कांच की नली में बंधे हुए फुग्गे को फुलाकर उस नली को बंद कर दें। दूसरी नली खुली है तो हवा का दबाव

(अ) शीशी में और फुग्गे के अंदर बराबर होगा

(ब) फुग्गे में ज़्यादा होगा

(स) शीशी में ज़्यादा होगा

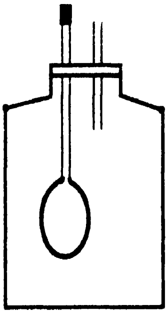

पांचवां सवाल: एक 250 मि.ली. के फ्लास्क तथा एक 250 मि. ली. के बीकर में हवा का दबाव

(अ) 250 मि.ली. के फ्लास्क में ज़्यादा है

(ब) 250 मि.ली. के बीकर में ज़्यादा है

(स) दोनों में बराबर है

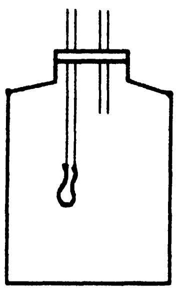

चित्र-4 गुब्बारे वाला प्रयोग

पर फुग्गा नहीं चढ़ाया हुआ है उसके ऊपर वाले सिरे पर मुंह लगाकर हवा को बाहर खींचिए और देखिए क्या होता है! फुग्गे को किसी ने छेड़ा नहीं है, फिर भी वह फूलने लगता है।

प्रश्न: इस स्थिति में फुग्गा क्यों फूलता है? उत्तर खोजते समय याद रखें कि बहाव हमेशा ज़्यादा दबाव से कम दबाव की ओर होता है।

ऊपर दिए गए उदाहरणों में दबाव में अन्तर है, पर हवा को बहने से रोकती है कुछ ठोस दीवारें – ट्यूब, फुग्गा, बोतल आदि। लेकिन वायुमण्डल में तो ऐसी दीवारें नहीं होतीं। अतः किसी कारणवश अगर कहीं दबाव कम हो जाए, तो चारों ओर से हवा उस तरफ दौड़ती है। इसलिए दबाव कम होने के साथ तेज़ हवा चलने का हमेशा नाता बना रहता है।

हाल में उड़ीसा में आए भीषण चक्रवाती तूफान में हज़ारों जानें गईं। ऐसे चक्रवात के केन्द्र में एक कम दबाव का क्षेत्र होता है, जिसके चारों ओर तेज़ हवाओं का इलाका होता है। इस विशेष बनावट का कारण थोड़ा जटिल है। मौका मिला तो इस पर फिर कभी बात करेंगे।

हवा के दबाव के बारे में आपकी शंकाएं कुछ हद तक दूर हो गई होंगी। अब संदर्भ के अंक-26 में दिए हवा के दबाव से संबंधित सवालों पर फिर एक बार विचार कीजिए। उन सब सवालों को पिछले पन्ने पर फिर से दोहराया गया है।

क्या कुछ प्रश्नों के उत्तर मिले? क्या कुछ प्रश्नों के आपके दिए गए उत्तर बदल गए? क्या कुछ नई शंकाएं पैदा हो गईं? जो भी हो, हमें संदर्भ के पते पर लिख भेजिए।

अमिताभ मुखर्जी: दिल्ली विश्वविद्यालय में भौतिक शास्त्र पढ़ाते हैं।

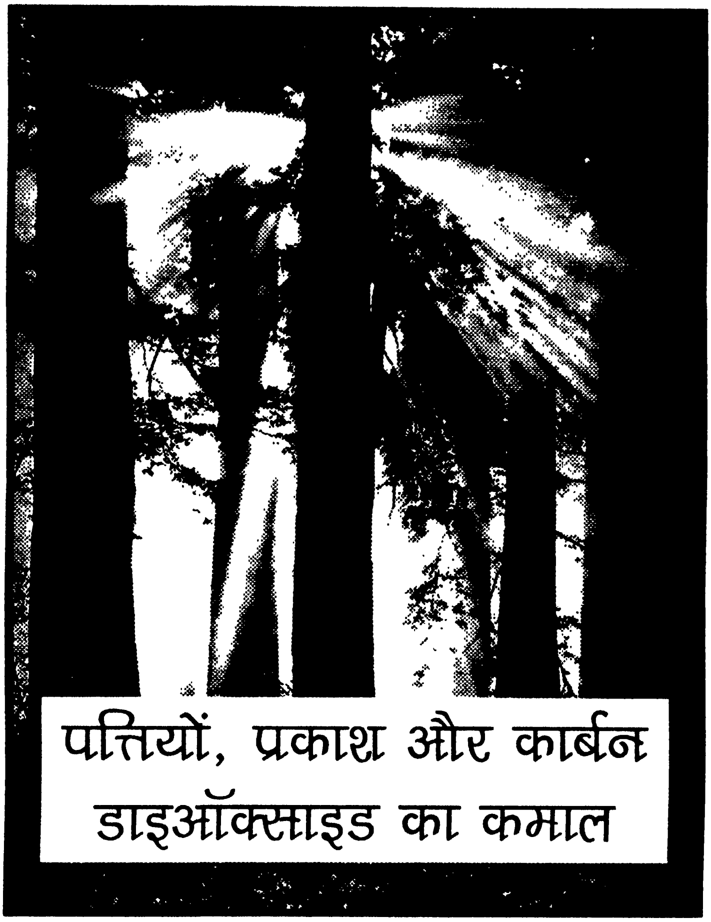

किशोर पंवार

पौधे भोजन कैसे बनाते हैं इसके बारे में हमने कुछ-अंक पहले संदर्भ में चर्चा की थी। उस लेख में हमने देखा था कि किस तरह, छोटे-छोटे आसान से प्रयोगों द्वारा, पौधों में भोजन निर्माण की प्रक्रिया को कदम-दर-कदम समझा गया।* कुल मिलाकर हमने यह जाना कि पौधे अपने हरे भाग में स्थित क्लोरोफिल की सहायता से पानी और कार्बन डाइऑक्साइड से मंड बनाते हैं। इस क्रिया में पानी को तोड़कर उससे ऑक्सीजन अलग करने, और हाइड्रोजन को कार्बन डाइऑक्साइड से जोड़ने में जो ऊर्जा लगती है वह सूर्य के प्रकाश से मिलती है। इस तरह प्रकृति में यहां-वहां बिखरे

पौधों में भोजन के बारे में शुरुआती खोजबीन पर विस्तृत जानकारी के लिए संदर्भ के अंक 27 में प्रकाशित लेख 'पौधों में भोजन का निर्माण' देखिए।

ये 'हरे एंटीना' सूर्य की विकिरण ऊर्जा को पकड़कर उसे शर्करा, मंड, प्रोटीन और वसा जैसे उच्च ऊर्जा युक्त पदार्थों में बदल देते हैं; जिसे आवश्यकता पड़ने पर ये स्वयं और हमारे जैसे अन्य परपोषी इस्तेमाल कर अपना जीवन निर्वाह करते हैं।

भोजन निर्माण की इस क्रिया में उपयोग में आने वाला कच्चा माल यानी कार्बन डाइऑक्साइड और पानी क्रमशः हवा और जड़ों से मिलता है। कार्बन डाइऑक्साइड हवा से पेड़-पौधों की पत्तियों की सतह पर पाए जाने वाले रंध्रों, जिन्हें स्टोमेटा कहते हैं, के द्वारा होती हुई पत्तियों के अंदर पहुंचती है। आवश्यक पानी ज़मीन से जड़ों द्वारा सोख लिया जाता है। इतना सब जान लेने के बाद भी बहुत से सवाल अनुतरित रह जाते हैं – का प्रकाश इस क्रिया में किस तरह मददगार है; पत्तियों में उपस्थित हरा पदार्थ 'क्लोरोफिल' क्या है; पत्तियों में यह कहां मिलता है; प्रकाश संश्लेषण में इसकी क्या और कैसी भूमिका है, आदि, आदि।

सवाल यह भी है कि हवा की कार्बन डाइऑक्साइड पत्तियों में कहां जाती है? उसे कौन ग्रहण करता है? उससे ग्लूकोज़ और मंड कैसे बनता है? इस लेख में हम इन्हीं प्रश्नों के उत्तर जानने का प्रयास करेंगे। अपनी खोज की शुरुआत करते हैं पौधों में 'भोजन निर्माण के कारखानों' यानी पत्तियों से।

पत्तियां और प्रकाश

आपने कभी सोचा है कि कुछ अपवाद छोड़कर सभी पेड़-पौधों की पत्तियां हरी ही क्यों होती हैं, किसी दूसरे रंग की क्यों नहीं? यह तो आप जानते ही होंगे कि कोई वस्तु हमें उसी रंग की दिखती है जिस रंग को वह परावर्तित कर देती है। जैसे, कोई फूल लाल रंग का है तो इसका अर्थ यह हुआ कि उसकी पंखुड़ियां लाल रंग को नहीं सोख रही हैं अतः वह हमें लाल दिखाई देता है। ठीक यही बात पत्तियों पर भी लागू होती है।

यदि आपने रेडियो सुना है तो उद्घोषकों के मुंह से यह भी सुना होगा कि 'हम मीडियम वेव पर फलां-फलां किलोहर्ट्ज़ पर प्रसारण कर रहे हैं।' या 'हम इतने किलोहर्ट्ज़ पर आकाश-वाणी, भोपाल से बोल रहे हैं।' जब मैं छोटा था तब गांवों में रेडियो का वही महत्व था जो आज टी. वी. का है। तब तो 'शॉर्ट वेव, मीडियम वेव, किलोहर्ट्ज़' ये सब बातें समझ न आती थीं, परन्तु अपनी उच्च शिक्षा की पढ़ाई के दौरान जब किताबों में सूर्य से पृथ्वी पर आने वाली विद्युत चुम्बकीय तरंगों का चार्ट देखा तो बड़ा आश्चर्य हुआ। पता चला कि सूर्य

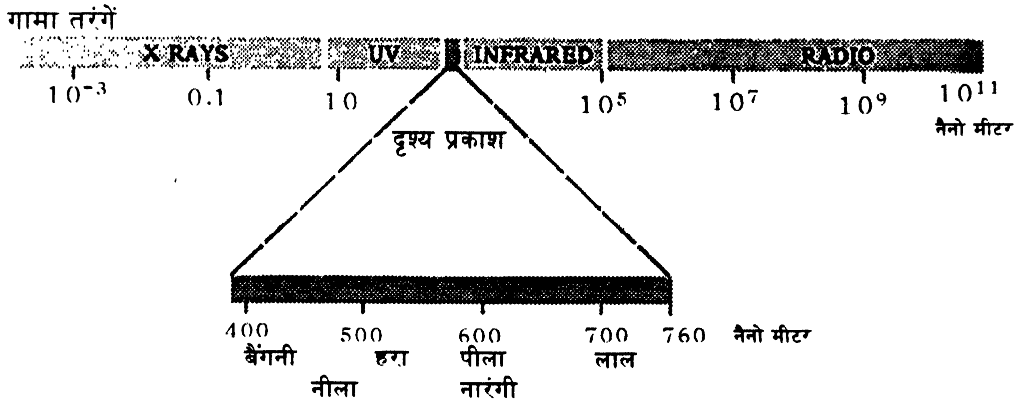

सूर्य प्रकाश के विभिन्न हिस्से: सूर्य प्रकाश को तरंग लम्बाई के आधार पर एक्स तरंगें, पराबैंगनी तरंगें, दृश्य प्रकाश, इन्फ्रारेड तरंगें आदि हिस्सों में बांटा गया है। इसमें से एक छोटे से हिस्से के प्रति हमारी आंखें संवेदनशील हैं। प्रकाश संश्लेषण व विकिरण आधारित ज़्यादातर जैविक प्रक्रियाएं सूर्य प्रकाश की विद्युत-चुंबकीय तरंगों के इसी हिस्से (और उसके इर्द-गिर्द के थोड़े से हिस्से) पर आधारित हैं।

की किरणों से भी रेडियो वेव आती हैं; शॉर्ट वेव भी और मीडियम वेव भी। इतना ही नहीं सूर्य के प्रकाश में अल्फा, बीटा, गामा किरणों के अतिरिक्त 'एक्स' किरणें भी होती हैं।

सूर्य से आने वाली विद्युत चुम्बकीय तरंगों में 10^{-12} से.मी. यानी कॉस्मिक किरणों से शुरू होकर 10^4 से. मी. तक की रेडियो वेव तरंगें होती हैं। इनके बीच, 10^{-6} से 10^{-2} से. मी. के बीच अल्ट्रावॉयलेट व अवरक्त किरणें होती हैं। इस हिस्से का केवल एक छोटा-सा भाग यानी, 400 नेनोमीटर से लेकर 750 नेनोमीटर तक की किरणें ही हमें दिखाई देती हैं। इस छोटे-से हिस्से के दोनों तरफ हमारे लिए अंधेरा है। केवल यही भाग रोशनी या दृश्य-प्रकाश है।

दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि सूर्य की किरणों का जो हिस्सा हमारी आंखें देख सकती हैं वही हमारे लिए 'प्रकाश' है। न्यूटन के समय से हम जानते हैं कि यह 'प्रकाश' सात रंगों से मिलकर बना है। पेड़-पौधों व जंतुओं में पाए जाने वाले वे कार्बनिक पदार्थ जो सूर्य के इस हिस्से की विशिष्ट किरणों को सोखते हैं, रंजक कहलाते हैं। क्लोरोफिल, हीमोग्लोबिन, ज़ेन्थोफिल और एन्थोसाइनिन ऐसे ही कुछ पिगमेंट (रंजक) हैं। क्लोरोफिल की विशेषता है कि वह सूर्य के प्रकाश में से हरे रंग की तरंगों को नहीं सोखता, इसीलिए चारों ओर दुनिया हरी भरी है।

क्लोरोफिल और क्लोरोप्लास्ट

थोड़ा और गहराई में जाकर पत्तियों के अंदर झांकें तो पता चलता है कि ये हरा पदार्थ क्लोरोफिल, पत्ती की ऊपरी व नीचे की सतह के बीच पाई जाने वाली विशेष प्रकार की कोशिकाओं में भरा होता है। इन कोशिकाओं को मीज़ोफिल कहते हैं। वास्तव में ये कोशिकाएं ही हरी होती हैं और इनके हरे होने का कारण इनमें भरे वे छोटे-छोटे सैंकड़ों कण हैं जिन्हें 'क्लोरोप्लास्ट' कहते हैं। यदि आप इन हरी-पीली रचनाओं यानी कि क्लोरो-प्लास्ट को देखना चाहते हैं तो आसपास के किसी तालाब, नदी या नाले से कोई जलीय वनस्पति ले आइए। वैसे इस कार्य के लिए काई या हाइड्रिला (चोई) अच्छे रहते हैं। किसी तंतुवत

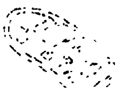

काई के एक-दो सूत्र या हाइड्रिला की एक-दो पत्तियां एक स्लाइड पर रखकर कम्पाउंड माइक्रोस्कोप का इस्तेमाल करते हुए 'हाई और लो पॉवर' में देखें। ध्यान से देखने पर हाइड्रिला की पत्तियों में हरे-पीले कण आपको रेलगाड़ी के डिब्बे की तरह एक के पीछे एक चलते नज़र आएंगे। इसे देखकर आप निश्चित रूप से आनंदित होंगे। पौधों की पत्तियों में भरी पड़ी भोजन निर्माण की ये इकाइयां अलग-अलग आकार और रूप में पाई जाती हैं। जैसे स्पायरोगायरा में स्पायरल रिबिन के आकार की, तो हाइड्रिला में चकतीनुमा।

क्लोरोप्लास्ट की आंतरिक रचना देखने पर पता चलता है कि इनके दो हिस्से होते हैं। एक हिस्से में ऐसे लगता है मानो एक के ऊपर एक रखकर

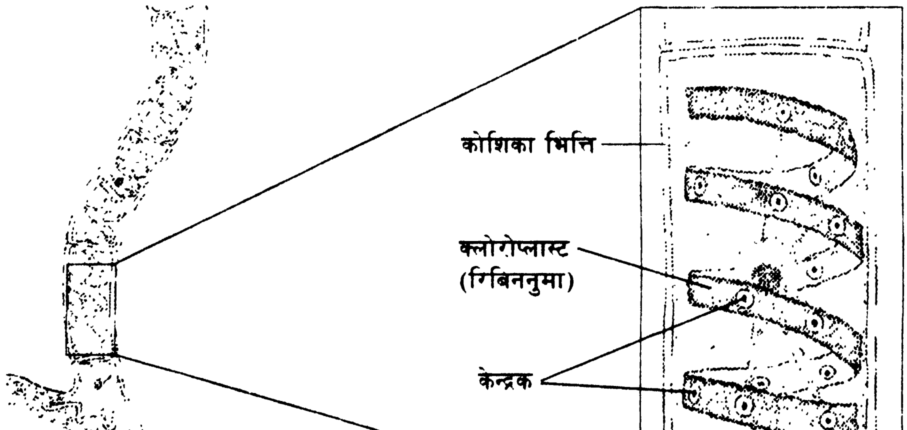

स्पायरोगायरा की कोशिका में
स्पायरल रिबिन के आकार की क्लोरोप्लास्ट

क्लोरोप्लास्ट के भीतर:

1. मक्के की पत्ती की काट जिसे सूक्ष्मदर्शी से देखने पर क्लोरोप्लास्ट दिख रहा है। क्लोरोप्लास्ट के भीतर एक के ऊपर एक जमी चकतीनुमा थाइलेकॉइड रचनाओं के ढेर भी दिख रहे हैं।

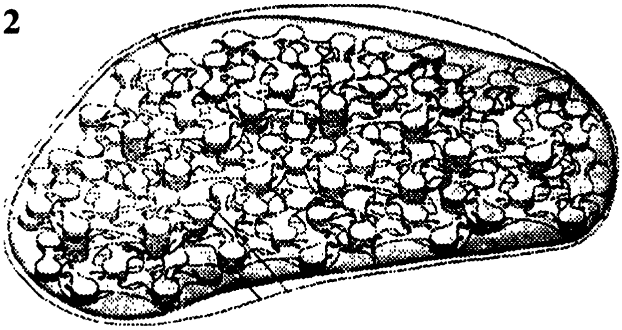

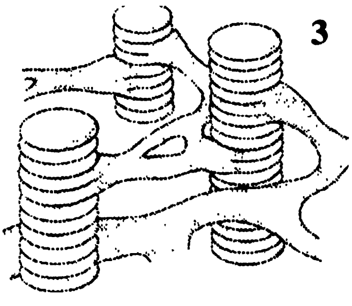

2. व 3. क्लोरोप्लास्ट के अंदर की संरचनाओं की जमावट और आपसी संबंध दिखाए गए हैं।

चकतीनुमा थाइलेकॉइड की ढेरियों को ग्रेनम या ग्रेना कहते हैं। ये सब ग्रेना आपस में थाइलेकॉइड की झिल्लियों से जुड़े रहते हैं। थाइलेकॉइड की इन झिल्लियों को स्ट्रोमा कहते हैं।

कोशिका में क्लोरोप्लास्ट के अंदर स्थित थाइलेकॉइड में ही क्लोरोफिल पाई जाती है।

सिक्कों की ढेरियाँ बनाई गई हैं, जो आपस में भी एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। ये ग्रेना हैं। ग्रेना में क्लोरोफिल अपने सहायक रंजकों (केरीटीनाइड और ज़ेन्थोफिल) के साथ भरी रहती है। यही वह जगह है जहां सूर्य का प्रकाश सोखा जाता है और भोजन बनने की शुरुआत होती है। बाहरी झिल्ली से घिरी बाकी जगह स्ट्रोमा है जिसमें भोजन बनाने में काम आने वाले एंज़ाइम भरे रहते हैं।

पत्तियों में तो तरह-तरह के पदार्थ और रंजक होते हैं। फिर यह कैसे पता चले कि कौन-सा रंग या रंजक पौधे में होने वाली किस क्रिया में सहायक है। इसका पता 'ऐन्जलमेन' ने अपने एक साधारण से प्रयोग से लगाया। यह प्रयोग एक बार फिर यह प्रमाणित करता है कि हर बार गहन निष्कर्ष निकालने के लिए विशाल उपकरणों की ज़रूरत नहीं होती।

प्रयोग एक – निष्कर्ष चार

इस जर्मन वनस्पति शास्त्री ने 1880 में किए इस साधारण से प्रयोग से बड़े महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले। इस

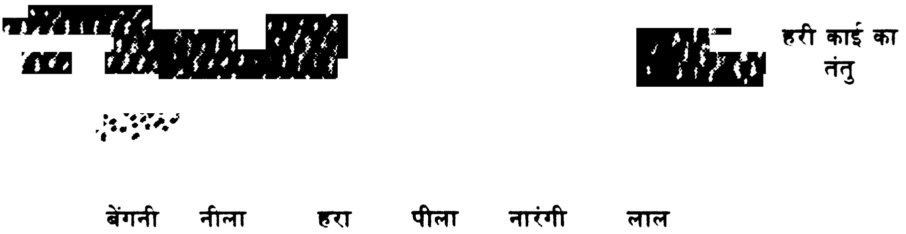

ऐन्जलमेन का प्रयोग: ऐन्जलमेन ने एक बेहद साधारण-सा दिखने वाला प्रयोग करके प्रकाश संश्लेषण की क्रिया के बारे में बहुत-सी बातें पता लगाईं। उसने एक कांच की पट्टी पर हरी काई के एक तंतु के साथ ऑक्सीजन का उपयोग करने वाले बेक्टीरिया रखे। इस कांच की पट्टी को सूक्ष्मदर्शी के नीचे रखकर दूसरी ओर से उस पर रोशनी डाली गई। परन्तु एक फर्क था कि उसने रोशनी प्रिज़्म में से गुज़ारकर प्रकाश का वर्णक्रम कांच की पट्टी पर डाला। कुछ देर बाद उसने पाया कि अधिकतर बेक्टीरिया क्लोरोप्लास्ट के उन हिस्सों के पास इकट्ठे हो गए जहां बेंगनी और लाल रंग का प्रकाश पड़ रहा था।
साथ ही चित्र में यह भी दिखाया गया है कि क्लोरोफिल दृश्य प्रकाश के बेंगनी और लाल हिस्सों को सर्वाधिक सोखता है। इन दो बातों से उसने निष्कर्ष निकाला कि प्रकाश संश्लेषण की क्रिया क्लोरोफिल द्वारा सोखी गई प्रकाश किरणों पर निर्भर है और उसी क्रिया में ऑक्सीजन निकलती है।

प्रयोग में उसने नदी-नालों में उगने वाली एक हरी काई या शैवाल 'स्पायरोगायरा' का उपयोग किया। इसकी विशेषता है, इसमें बड़े-बड़े रिबिननुमा स्पायरल क्लोरोप्लास्ट का पाया जाना। प्रयोग में ऐन्जलमेन ने स्पायरोगायरा के एक सूत्र को स्लाइड पर वायुजीवी ऑक्सी-बेक्टीरिया के साथ रखकर सील कर दिया। इस प्रयोग के लिए उसने ऐसा बेक्टीरिया चुना जो हलचल कर सकता हो। स्पायरोगायरा और बेक्टीरिया की इस स्लाइड पर प्रकाश डालने पर अधिकांश बेक्टीरिया स्पायरोगायरा के स्पायरल क्लोरोप्लास्ट के आसपास जमा हो गए। इससे यह पता चला कि भोजन निर्माण की क्रिया में निकलने वाली ऑक्सीजन क्लोरोप्लास्ट से ही निकलती है।

इसी प्रयोग में अब उन्होंने स्लाइड को प्रकाश के वर्णक्रम यानी स्पेक्ट्रम के बीच रखा। ऐसी व्यवस्था उन्होंने माइक्रोस्कोप की रोशनी के स्रोत और स्टेज पर रखी स्लाइड के बीच एक प्रिज़्म रखकर बनाई। शैवाल के तंतु को उन्होंने ऐसे रखा कि वह वर्णक्रम के समानांतर रहे। इस बार उन्होंने देखा कि अधिकतर बेक्टीरिया शैवाल के उस हिस्से के इर्द-गिर्द जमा हो गए हैं जहां नीला और लाल प्रकाश पड़ रहा था। इससे पता चला कि अधिकतर ऑक्सीजन इन्हीं दो प्रकाश तरंगों के आसपास निकलती है, क्योंकि अधिकांश बेक्टीरिया यहीं जमा थे।

इस प्रयोग से पहली बार क्लोरोप्लास्ट से ऑक्सीजन निकलने का सीधा प्रमाण मिलता है, जिससे यह भी पता चलता है कि ज़्यादा फोटोसिन्थेसिस भी इन्हीं क्षेत्रों में होती है।

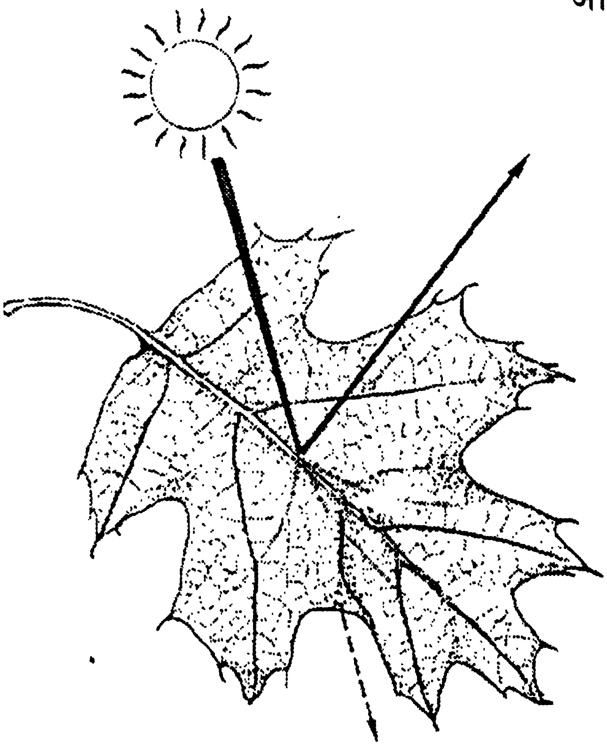

पत्तियों पर रोशनी: पत्तियों पर पड़ने वाली सूरज की किरणों में से कुछ पत्तियों के पार निकल जाती हैं, कुछ को पत्तियां सोख लेती हैं और कुछ किरणों को पत्तियां परावर्तित करती हैं। पत्तियां हरी इसलिए दिखती हैं चूंकि वे प्रकाश की हरी तरंगों को परावर्तित कर देती हैं।

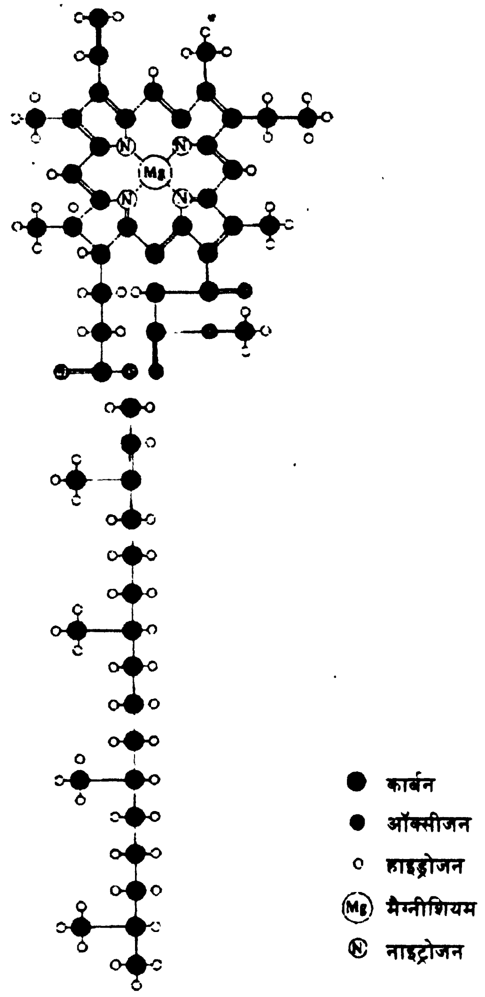

क्लोरोफिल 'ए' की आण्विक संरचना

ऐन्जलमेन के प्रयोग से प्राप्त फोटोसिन्थेसिस की क्रिया का स्पेक्ट्रम और क्लोरोफिल का अवशोषण स्पेक्ट्रम आपस में मेल खाते हैं। इससे उसने यह निष्कर्ष निकाला कि क्लोरोफिल द्वारा अवशोषित प्रकाश ही फोटोसिन्थेसिस के लिए ज़िम्मेदार है; और क्लोरोफिल ही वह रंजक है जिस पर इस पूरी प्रक्रिया का दारोमदार है।

क्लोरोफिल और ऊर्जा का संग्रहण

पौधों की पत्तियों पर जब सूर्य की रोशनी पड़ती है तो उसका हश्र पिछले पन्ने पर दिखाए चित्र के अनुसार होता है। यह तो हम जान ही चुके हैं कि सूर्य प्रकाश के अवशोषण का काम पत्तियों में उपस्थित क्लोरोप्लास्ट करते हैं। वस्तुतः यह काम हरे रंजक क्लोरोफिल द्वारा किया जाता है। इस रंजक की रचना हमारे खून में मिलने वाले रंजक हीमोग्लोबिन से खूब मिलती है। फर्क इतना भर है कि क्लोरोफिल के केन्द्र में जहां मैग्नीशियम है, वहीं हीमोग्लोबिन में आयरन यानी लोहा होता है।

प्रकाश ऊर्जा ग्रहण कर क्लोरोफिल, उत्तेजित अवस्था में आ जाता है। इस उच्च ऊर्जा वाली स्थिति में मैग्नीशियम के इलेक्ट्रॉन, उच्च ऊर्जा स्तर पर चले जाते हैं। ऐसे क्लोरोफिल अणु उत्तेजित यानी एक्साइटेड कहलाते हैं। और फिर अगर ऐसे क्लोरोफिल के अणु से एक इलेक्ट्रॉन बाहर निकल जाता है तो कहा जाता है कि उस क्लोरोफिल के अणु का ऑक्सीकरण हो गया है।

क्लोरोफिल अणु से इलेक्ट्रॉन का निकलना कई प्रकाश रासायनिक क्रियाओं की शुरुआत है। इससे निकला इलेक्ट्रॉन क्लोरोप्लास्ट में उपस्थित विभिन्न इलेक्ट्रॉन ग्राहियों द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है और अंत में ये

प्रकाश और अंधकार क्रियाएं

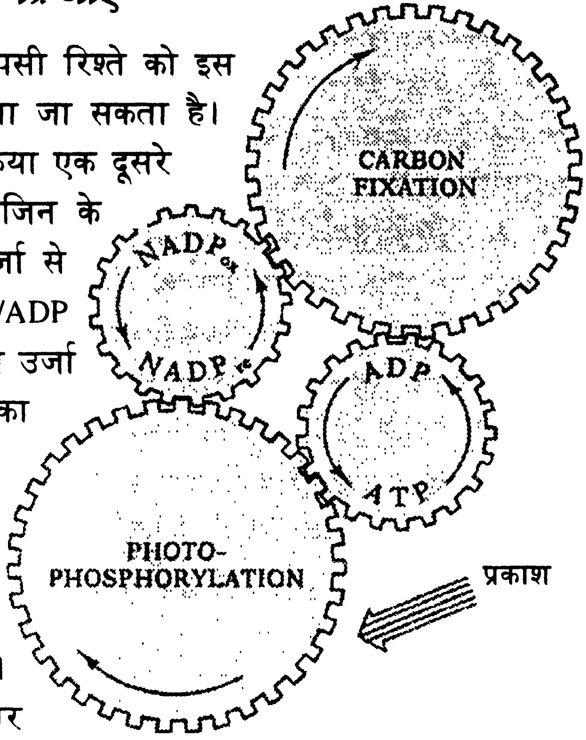

भोजन निर्माण के चरणों के आपसी रिश्ते को इस चित्र की मदद से आसानी से समझा जा सकता है। वस्तुत: प्रकाश संश्लेषण की पूरी प्रक्रिया एक दूसरे से इस तरह जुड़ी है जैसे किसी इंजिन के छोटे-बड़े गीयर। सूर्य की प्रकाश ऊर्जा से पहला गीयर चलता है। जिससे ATP/ADP व NADP गीयर चलते हैं, और उच्च उर्जा युक्त ATP और अपचयित NADP का निर्माण होता है। यही 'प्रकाश क्रिया' है।

ये दो छोटे गीयर फिर एक बड़े 'कार्बन स्थगीकरण गीयर' को चलाते हैं, जिसमे हवा मे आयी CO_2 से PGAL और फिर ग्लूकोज़ और मंड बनते हैं। चित्र का एक बड़ा और दो छोटे गीयर 'प्रकाश क्रिया' को दर्शाते हैं और दूसरा बड़ा गीयर 'अंधकार क्रिया' को। इस तरह हम पाते हैं कि भोजन निर्माण के ये दोनों चरण एक दूसरे मे जुड़े हुए हैं और एक दूसरे के पूरक हैं।

सब इलेक्ट्रॉन निकोटीनामाइड एडीनाइन डायफॉस्फेट, जिसे संक्षेप में एन. ए. डी. पी. कहते हैं, के पास पहुंचते हैं।

जब इलेक्ट्रॉन एक ग्राही पदार्थ से दूसरे द्वारा ग्रहण किए जाते हैं तब कुछ स्थानों पर बहुत अधिक, स्वतंत्र ऊर्जा मुक्त होती है जिसका उपयोग कर ऐडीनोसीन डायफास्फेट से एडीनोसीन ट्रायफास्फेट बना लिया जाता है।

$$ADP + P : \xrightarrow[\text{सूर्य का प्रकाश}]{\text{क्लोरोफिल}} ATP$$

सन् 1954 में अरनोन ऐलन और वॉटले ने प्रकाश द्वारा ADP से उच्च ऊर्जायुक्त ATP के निर्माण को 'फोटोफास्फोरायलेशन' नाम दिया।

क्लोरोफिल की सहायता लेते हुए प्रकाश ऊर्जा के उपयोग से पानी को

तोड़ा जाता है, जिससे हाइड्रोजन और हाइड्रॉक्सिल आयन अलग-अलग हो जाते हैं। पत्तियों पर पड़ने वाले कुल प्रकाश का लगभग 4% प्रकाश ही क्लोरोफिल द्वारा अवशोषित होता है, जो इस कार्य में काम आता है। सामान्य स्थिति में पानी के विखंडन के लिए इतनी उच्च ऊर्जा की आवश्यकता होती है कि इलेक्ट्रिक आर्क का इस्तेमाल करना पड़ता है, जबकि पेड़-पौधों की कोशिका में यह काम क्लोरोफिल की उपस्थिति में आसानी से हो जाता है।

सक्रिय क्लोरोफिल + $4H_2O$

↓

सामान्य क्लोरोफिल + 4H + 4OH

इस क्रिया में स्वतंत्र हुए हायड्रोजन (इलेक्ट्रॉन + प्रोटॉन) अस्थाई रूप से NADP द्वारा ग्रहण कर लिए जाते हैं।

NADP + 2H NADPH + H

इस तरह ADP से ATP और NADP से NADPH + H के बनते ही पौधों के भोजन निर्माण की क्रिया में प्रकाश की भूमिका समाप्त हो जाती है। प्रकाश की सहायता से बने ये उत्पाद ही भोजन निर्माण के अगले चरण में काम आते हैं।

एक क्रिया दो चरण

ब्रिटिश वैज्ञानिक ब्लेकमेन ने 1905 में ही यह बता दिया था कि इस भोजन निर्माण क्रिया के दो चरण हैं। पहला 'प्रकाश क्रिया' और दूसरा 'अंधकार क्रिया'। पहले चरण के लिए प्रकाश ज़रूरी है और दूसरा चरण अंधकार में भी चलता रहता है। यानी इस दूसरे चरण के लिए प्रकाश ज़रूरी नहीं होता, किन्तु इसका मतलब यह कतई नहीं कि ये क्रिया अंधेरे में ही होगी; ये क्रिया दिन में भी चलती है। 'अंधकार क्रियाएं' एन्ज़ाइम द्वारा सम्पन्न होती हैं अत: इनमें थोड़ा ज़्यादा समय लगता है।

क्लोरोप्लास्ट के अंदर

यदि हम प्रकाश संश्लेषण का सामान्यीकृत समीकरण देखें तो पता चलता है कि इसमें पानी का ऑक्सीकरण हो रहा है और कार्बन डाइऑक्साइड का अपचयन यानी रिडक्शन।

$6CO_2 + 12H_2O$

↓ क्लोरोफिल, सूर्य प्रकाश

$C_6H_{12}O_6 + 6H_2O + 6O_2$

आइए देखें की कार्बन डाइऑक्साइड का पत्ती के अंदर जाकर क्लोरोप्लास्ट तक पहुंचने के बाद क्या होता है। वायुमंडलीय हवा स्टोमेटा द्वारा अंदर जाती है और उसमें से कार्बन डाइऑक्साइड घुलित अवस्था में क्लोरोप्लास्ट तक पहुंचती है। ऊपर हमने भोजन निर्माण के दो चरणों की बात की है। उनमें से पहला चरण

यानी प्रकाश क्रिया 'ग्रेना' में होती है।

ग्रेना में क्लोरोफिल अपने अन्य सहायक रंजकों के साथ भरा रहता है। यहीं पर होते हैं विभिन्न इलेक्ट्रॉन ग्राही पदार्थ। ग्रेना में ही कार्बन डाइऑक्साइड को अपचयित करने के लिए इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन तैयार रहते हैं और ऊर्जा के भंडार ए. टी. पी. बनते हैं।

दूसरा चरण 'स्ट्रोमा' में पूरा होता है। यहां CO_2 को अपचयित कर उससे विभिन्न शर्कराएं व मंड आदि बनाए जाते हैं। इसके लिए सभी आवश्यक साजो-सामान अर्थात विभिन्न एन्ज़ाइम और CO_2 को ग्रहण करने वाले पदार्थ मौजूद होते हैं। ग्रेना और स्ट्रोमा के सभी घटक मिलकर वो जादू दिखाते हैं जिस पर सारी दुनिया का भरोसा है; जिसके दम पर सारी दुनिया टिकी है, सांस ले रही है, पेट भर रही है।

कार्बन डाइऑक्साइड का भविष्य

अब आते हैं हम अपने अगले सवालों पर, मसलन पत्तियों में आने वाली CO_2 को कौन ग्रहण करता है? क्या CO_2 से सीधे ही मंड बन जाता है या अन्य मध्यवर्ती पदार्थ भी बनते हैं? आदि, आदि। यह पता लगाना आसान नहीं है क्योंकि पत्तियों में एक ही समय में श्वसन और प्रकाश संश्लेषण से संबंधित तमाम रासायनिक क्रियाएं चलती रहती हैं। इनसे बनने वाले पदार्थ पत्तियों में उपस्थित रहते हैं। ऐसे में कैसे पता चले कि कौन-सा पदार्थ किस क्रिया के किस चरण में बना। यह पता लगाना 1940 तक आसान न था।

मुश्किल हुई आसान

किसी प्रकाशरहित या अंधेरे मकान में एक काली बिल्ली छोड़ दी जाए, तो यह पता लगाना मुश्किल होता है कि वह उस मकान के किस कमरे में है, या कहां-कहां घूम रही है उस मकान में। परन्तु यदि उसके गले में एक घंटी बांध दी जाए तो यह पता लगाना आसान हो जाता है कि वह कहां-कहां जा रही है। लगभग यही बात पत्तियों में जाने वाली CO_2 की पहचान करने के लिए अपनाई गई। यहां रेडियो सक्रिय कार्बन का इस्तेमाल घंटी के रूप में हुआ। 1940 में केलिफोर्निया के सेमुअल रूबेन और मार्टिन कोमेन द्वारा खोजे गए कार्बन के एक रेडियो सक्रिय आइसोटोप $^{14}CO_2$ ने यह मुश्किल आसान कर दी। यह कार्बन पत्तियों में कहां जाता है, किस से क्रिया करता है और क्या बनाता है, यह सब जानना बहुत आसान हो गया, क्योंकि इसके उपयोग से बने सभी पदार्थों में $^{14}CO_2$ को इसकी रेडियो सक्रियता के कारण पहचाना जा सकता था। इस काम में 'पेपर क्रोमेटोग्राफी' ने महत्वपूर्ण तकनीकी योगदान दिया। इन दोनों

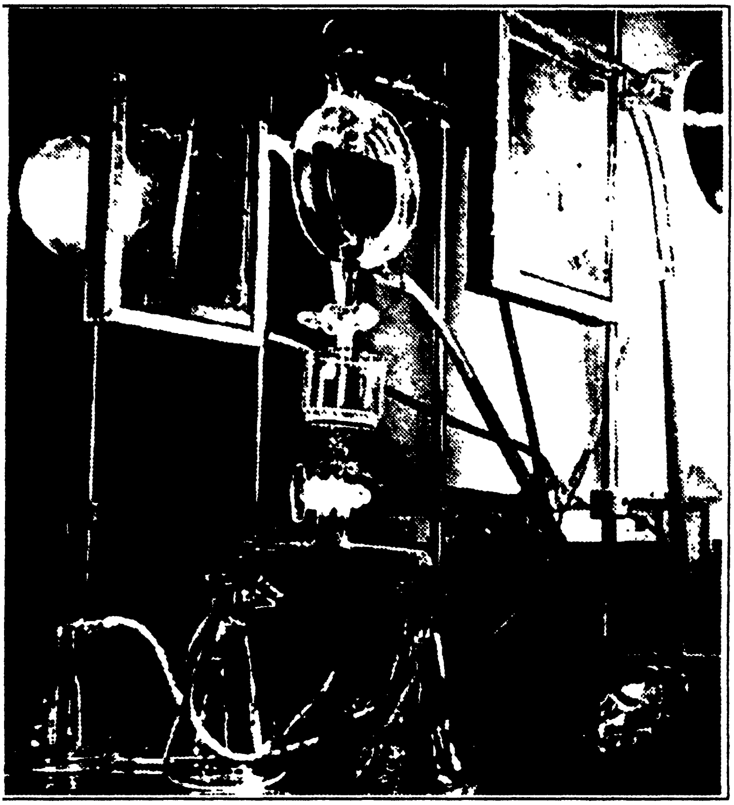

केल्विन का उपकरण: इम उपकरण की मदद से केल्विन ने प्रकाश संश्लेषण की क्रिया का अध्ययन किया। ऊपर की ओर रखे कांच के चकर्तीनुमा बर्तन में क्लोरेल्ला एलगी को रखा जाता है। $^{14}CO_2$ की मौजूदगी में निश्चित समय तक प्रकाश संश्लेषण की क्रिया करवाकर नीचे के स्टॉप-कॉर्क की मदद से एलगी को बाहर निकाल लेते हैं। तत्पश्चात इसकी रेडियो ऑटोग्राफी की जाती है।

की सहायता से ही यह पता लगाया जा सका कि आखिर माज़रा क्या है।

शीघ्र ही केलिफोर्निया विश्व-विद्यालय के मेल्विन केल्विन और बाशम इस चमत्कारी कार्बन-14 की मदद से पौधों में CO_2 के मार्ग का पता लगाने में जुट गए। कई वर्षों की कड़ी मेहनत के बाद इन्हें कामयाबी मिली। इन्होंने अपने प्रयोग 'क्लोरेल्ला' नामक एक कोशीय हरी शैवाल पर किए। सबसे पहले उन्होंने अपने बनाए गए विशेष उपकरण में $^{14}CO_2$ की उपस्थिति में प्रकाश संश्लेषण की क्रिया को केवल 5 सेकेंड के लिए चलने दिया। प्राप्त एक्सट्रेक्ट (पदार्थ) की रेडियो ऑटोग्राफी करने पर पता चला कि इस अवधि में एक तीन कार्बन वाला पदार्थ फास्फोग्लिसरिक अम्ल (पीजीए) बनता है। इसके बाद उन्होंने प्रकाश संश्लेषण की अवधि 30 सेकेंड, 90 सेकेंड और 5 मिनिट तक बढ़ाई। समय बढ़ाने से प्राप्त एक्स्ट्रेक्ट का विश्लेषण करने पर देखा गया कि अब रेडियो सक्रिय कार्बन ग्लूकोज़, फ्रुक्टोज़ और सुक्रोज़ शर्कराओं में मिलता है। इस तरह पता चला कि पीजीए से ही आगे चलकर बड़े अणु बनते हैं। केल्विन ने बताया कि कार्बन का स्थरीकरण एक चक्रीय क्रिया है।

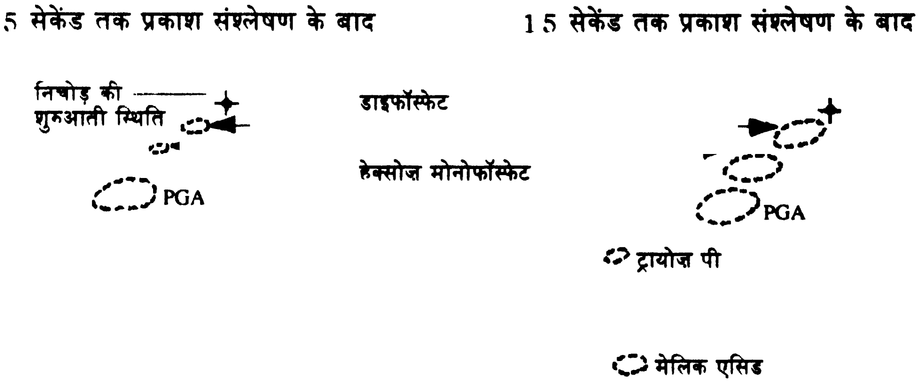

रेडियोऑटोग्राम: $^{14}CO_2$ की मौजूदगी में 5 सेकेंड और 15 सेकेंड तक चली प्रकाश संश्लेषण की क्रिया के बाद निचोड़ की पेपर क्रोमेटोग्राफी और रेडियोऑटोग्राम बनाकर अध्ययन करने पर पता चला कि तीन कार्बन वाला पदार्थ फास्फोग्लिसरिक अम्ल (पीजीए) बनता है। इसके बाद प्रकाश संश्लेषण की अवधि 30 सेकेंड, 90 सेकेंड और 5 मिनिट तक बढ़ाई गई तो रेडियो सक्रिय कार्बन ग्लूकोज़, फ्रुक्टोज़ और सुक्रोज़ शर्कराओं में भी देखा गया। इस तरह पता चला कि पीजीए से ही आगे चलकर बड़े अणु बनते हैं।

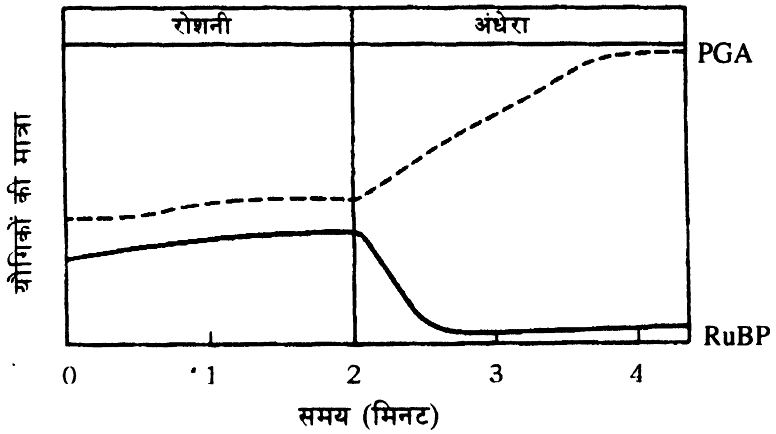

कार्बन डाइऑक्साइड का ग्रहणकर्ता: जेम्स बॉशम ने मालूम किया कि प्रकाश संश्लेषण के दौरान हवा की CO_2 का ग्राही एक 5 कार्बन पदार्थ रिबुलोज़ डायफॉस्फेट है। प्रकाश की उपस्थिति में रिबुलोज़ और पी.जी.ए. क्लोरोप्लास्ट में संतृप्त अवस्था में रहते हैं। परन्तु जैसे ही प्रकाश हटा दिया जाता है तो रिबुलोज़ डायफॉस्फेट की मात्रा तो एकदम घट जाती है परन्तु पी. जी. ए. की मात्रा अचानक बढ़ जाती है। अतः पी.जी.ए. के बनने और रिबुलोज़ के खर्च होने में एक सीधा संबंध है। बॉशम का मानना था कि हवा से 5 कार्बन रिबुलोज़ ही कार्बन डाइऑक्साइड ग्रहण करता है जिससे एक 6 कार्बन वाला अस्थिर पदार्थ बनता है जो तुरंत पी.जी.ए. के दो अणुओं में टूट जाता है।

कार्बन डाइऑक्साइड का ग्रहणकर्ता

परन्तु अभी भी एक प्रश्न अनुतरित है कि हवा की कार्बन डाइऑक्साइड को क्लोरोप्लास्ट में सबसे पहले कौन ग्रहण करता है। जब केल्विन कार्बन के स्थरीकरण पर कार्य कर रहे थे, उसी समय जेम्स बाशम कार्बन के ग्राही पदार्थ की खोज में लगे हुए थे। शीघ्र ही उन्होंने पता लगा लिया कि हवा की CO_2 का ग्राही एक 5 कार्बन पदार्थ रिबुलोज़ डायफॉस्फेट है। इसका पता उन्हें अपने एक प्रयोग के दौरान लगा। उन्होंने देखा कि प्रकाश की उपस्थिति में रिबुलोज़ और पी.जी.ए. क्लोरोप्लास्ट में संतृप्त अवस्था में रहते हैं। परन्तु जैसे ही प्रकाश हटा दिया जाता है तो रिबुलोज़ डायफॉस्फेट की मात्रा तो एकदम घट जाती है परन्तु पी. जी. ए. की मात्रा अचानक बढ़ जाती है। अत: पी.जी.ए. के बनने और रिबुलोज़ के खर्च होने में एक सीधा संबंध है। उन्होंने बताया कि हवा से 5 कार्बन रिबुलोज़ ही कार्बन डाइऑक्साइड ग्रहण करता है जिससे एक 6 कार्बन वाला अस्थिर पदार्थ बनता है जो तुरंत पी.जी.ए. के दो अणुओं में टूट जाता है।

अब तक हमने बहुत से प्रश्नों पर गौर किया और इस दौरान यह भी देखा कि पत्तियों में ग्लूकोज़ तथा मंड कैसे बनता है। कार्बन के 'पथ' का पता लगाने के इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए केल्विन को 1961 का रसायन विज्ञान का 'नोबल पुरस्कार' दिया गया। उनके सम्मान में यह चक्र 'केल्विन चक्र' के नाम से जाना जाता है। इससे यह पता चलता है कि हवा की CO_2 को पकड़कर उससे ग्लूकोज़ और अन्य खाद्य पदार्थ बनाना हंसी खेल नहीं है। सूर्य की विकिरण ऊर्जा को स्थिर रासायनिक ऊर्जा में बदलना केवल इन हरे कारखानों के ही बस की बात है, जिन्हें हम जब चाहे तब कुल्हाड़ी की धार के हवाले कर देते हैं।

किशोर पंवार: शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय सेन्धवा, ज़िला बड़वानी में वनस्पति शास्त्र पढ़ाते हैं। स्कूली विज्ञान शिक्षण में रुचि रखते हैं व विज्ञान लेखन करते हैं।

वृत का क्षेत्रफल

पिछले अंक में हमने आपसे एक सवाल पूछा कि – किसी वृत की परिधि को आधा करके उसे उसके अर्धव्यास से गुणा कर दें तो हमें वृत का क्षेत्रफल मिल जाता है। वृत के सूत्र के आधार पर तो तुरंत समझ में आता है कि ऐसा क्यों होता है। लेकिन तर्क के आधार पर समझाइए कि इन दो राशियों को गुणा करने पर हमें वृत का क्षेत्रफल कैसे मिल जाता है?

इस सवाल का जवाब *दीपक सोंधिया, ज़िला उमरिया* ने भेजा है जिसे यहां प्रकाशित किया जा रहा है।

आमतौर पर वृत का क्षेत्रफल πr^2 से मिल जाता है। यानी परिधि का आधा πr और उसके अर्ध व्यास r को गुणा करने पर वृत का क्षेत्रफल $\pi r \times r = \pi r^2$ मिल जाता है। लेकिन यहां बात हो रही है इस सूत्र की तह तक जाने की।

वृत के क्षेत्र से हमारा तात्पर्य परिधि से घिरे हुए भाग से है। वृत की आकृति बनाकर समझने की कोशिश करते हैं कि आखिर इस सूत्र तक कैसे पहुंचा जा सकता है। कागज़ पर किसी भी त्रिज्या का एक वृत बनाया और फिर केन्द्र से परिधि तक सरल रेखाएं खींचकर वृत को काफी सारे हिस्सों में बांट दिया। यहां पर उदाहरण के लिए हमने वृत को 16 हिस्सों में बांटा है। ये सब हिस्से समद्विबाहु त्रिभुज हैं। (चित्र-1)

अब इस वृत के प्रत्येक समद्विबाहु त्रिभुज को अलग-अलग काटकर निकाल लेते हैं। और इन त्रिभुजों को एक कागज़ पर सीधे-उल्टे के क्रम में जमाते जाते हैं। (देखिए चित्र-2) ऐसा करने पर एक आयताकार आकृति बन जाती है।

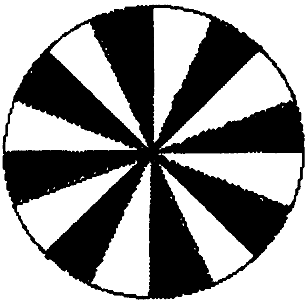

चित्र-1

πr

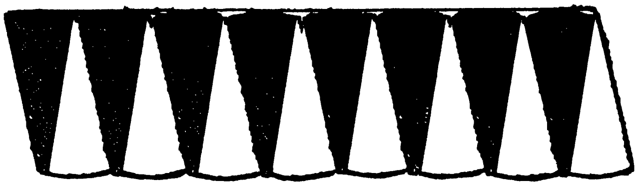

चित्र-2

मूल वृत का क्षेत्रफल इस नए बने आयत के बराबर है क्योंकि उस वृत के टुकड़ों से ही हमने यह आयत बनाया है। इस आयत की चौड़ाई वास्तव में वृत की त्रिज्या r ही है। (अगर वृत के 16 के बजाए खूब सारे हिस्से कर दिए जाएं तो यह आकृति चतुर्भुज के बजाए लगभग एक आयत जैसी होगी।)

अब आयत की दोनों लंबी भुजाओं को देखते हैं। वृत की परिधि से ही ये दोनों भुजाएं बनी हैं। इसलिए आयत की एक लंबी भुजा की लंबाई होगी:

$$1/2 \times \text{परिधि} = 1/2 \times 2\pi r = \pi r$$

अब हम इस आयत का क्षेत्रफल निकालते हैं जिसकी लंबाई πr और चौड़ाई r है।

आयत का क्षेत्र = लंबाई x चौड़ाई

$$= \pi r \times r$$

$$= \pi r^2$$

यानी कि हमारे मूल वृत का क्षेत्रफल πr^2 होगा।

इस बार का सवाल

बिजली के उपकरण तो आप खूब इस्तेमाल करते हैं। आपने यह भी गौर किया होगा कि इनमें तीन पिन वाले प्लग होते हैं। इनमें से एक पिन बाकी दो पिन से मोटी होती है, जिसे अर्थिंग पिन भी कहा जाता है। इस बार आपको यह बताना है कि अर्थिंग पिन बाकी दो पिन के मुकाबले मोटी क्यों होती है? बहुत ज़्यादा सिर खुजलाने वाला सवाल नहीं है........!

अपने जवाब इस पते पर भेजिए:

संदर्भ
द्वारा एकलव्य
कोठी बाज़ार, होशंगाबाद, म. प्र.
पिन: 461001

स्त्री शिक्षा
और स्त्री-पुरुष गैरबराबरी

हिमाचल प्रदेश के संदर्भ में

ज्यों द्रेज़

भारत में स्त्री-पुरुष असमानता अंशत: स्त्री के पुरुष पर आर्थिक रूप से निर्भर होने के कारण भी है। महिलाओं के पास सम्पत्ति के रूप में कुछ नहीं होता; यद्यपि वे परिवार के हित में अथक परिश्रम करती हैं, किन्तु आर्थिक निर्भरता के कारण न तो परिवार में और न ही समाज में उनको उचित सम्मान प्राप्त होता है। महिलाओं में शिक्षा के निम्न स्तर के कारण अधिकारों के बंटवारे में भी असमानता रहती है। बहुत सारे कारणों में यह भी एक कारण है कि, क्यों स्त्री-शिक्षा न सिर्फ सामाजिक व आर्थिक विकास में मददगार साबित होती है बल्कि समाज में समानता भी स्थापित करती है। एक बार यह प्रक्रिया शुरू हो जाए तो अपने आप को बढावा देती रहती है – अगर स्त्री-पुरुष समानता बेहतर होगी तो ज़्यादा लड़कियां स्कूल जाएंगी, जिससे लड़कियों की शिक्षा की दर में वृद्धि होगी . . . ।

हिमाचल प्रदेश में शिक्षा

जैसा कि सभी जानते हैं कि भारत के सभी राज्यों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की शिक्षा की दर बहुत कम है। 1991 की जनगणना के अनुसार 7 वर्ष तथा उससे ऊपर की महिलाओं में शिक्षा की दर 39% थी जबकि पुरुषों में यह दर 69% थी। अंतर्राष्ट्रीय आंकड़ों को देखें तो यह विभेद बहुत ऊंचा है। मानव विकास रिर्पोट 1998 के अनुसार केवल पांच ऐसे और देश हैं जिनमें महिलाओं की शिक्षा दर भारत से भी नीची है – ये देश हैं भूटान, सीरिया, टोगो, मलावी और मोज़म्बिक। इन पांचों देशों की जन-संख्या मिलाकर भी राजस्थान की आबादी से कम है; और दुनिया का ऐसा कोई देश नहीं है जहां महिला-पुरुष शिक्षा में राजस्थान जितनी असमानता हो।

भारत भर में पाए जाने वाले इस सामान्य पैटर्न में एक अपवाद है – वह है हिमाचल प्रदेश जहां स्त्री-पुरुष शिक्षा की दर में ज़बरदस्त समानता है। वहां लड़के-लड़कियों की शिक्षा में भागीदारी लगभग बराबर है। हिमाचल प्रदेश में बालिका शिक्षा की दर में इस वृद्धि को शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने के प्रयासों के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। 50 वर्ष पूर्व हिमाचल प्रदेश में स्त्री शिक्षा की दर बिहार और उत्तर प्रदेश से फर्क नहीं थी। आज हिमाचल प्रदेश केरल के बाद दूसरे क्रम पर है – विशेष रूप से अगर स्कूल उपस्थिति तथा छोटे बच्चों में साक्षरता की दर को देखें। छोटी आयु वर्ग के बच्चों में लगभग समस्त बच्चे स्कूल जाते हैं, न सिर्फ लड़के बल्कि लड़कियां भी। उच्च शिक्षा में ज़रूर उनमें असमानता बरकरार है,

पर हिन्दुस्तान के अन्य क्षेत्रों की तुलना में काफी कम। और उच्च शिक्षा के स्तर पर भी यह असमानता लगातार कम हो रही है।

एक और रोचक तथ्य है कि प्रारंभिक शिक्षा के स्तर पर लगभग यही स्थिति उत्तरप्रदेश के पहाड़ी क्षेत्रों में भी पाई जाती है। हिमाचल प्रदेश

हिमाचल प्रदेश और अन्य राज्यों की तुलना		
	हिमाचल प्रदेश	अन्य राज्य
साक्षरता दर 10-14 आयु वर्ग *(आधार वर्ष 1991)*	लड़के: 94% लड़कियां: 86%	लड़के: 65% लड़कियां: 43%
15-19 वर्ष वाला वर्ग कक्षा पांचवीं पास की	लड़के: 90% लड़कियां: 76%	लड़के: 70% लड़कियां: 29%
कक्षा आठवीं पास की	लड़के: 61% लड़कियां: 47%	लड़के: 49% लड़कियां: 18%

6 से 14 साल तक के स्कूल जाने वाले व न जाने वाले बच्चों की स्थिति (आधार वर्ष: 1996)				
	हिमाचल प्रदेश		अन्य राज्य	
	लड़के	लड़कियां	लड़के	लड़कियां
हाल ही में स्कूलों में दाखिला लेने वाले	97%	95%	86%	57%
जो कभी दाखिल नहीं हुए	1%	2%	8%	31%
स्कूल छोड़ने वाले	2%	3%	6%	12%

की बनिस्बत यहां पर बच्चों के शाला जाने की दर कम है, परन्तु फिर भी उत्तर प्रदेश के ये इलाके बहुत पीछे नहीं हैं। उत्तराखंड के गढ़वाल जैसे विकसित इलाकों में तो परिस्थिति एकदम हिमाचल प्रदेश जैसी ही है। यह तथ्य और भी महत्वपूर्ण बन जाता है क्योंकि उत्तरप्रदेश के अन्य इलाकों में प्राथमिक शिक्षा की दर बहुत नीची है। उत्तर प्रदेश भारत के शैक्षिक स्तर पर सबसे पिछड़े राज्यों में से एक है। उत्तराखण्ड व हिमाचल प्रदेश में स्त्री शिक्षा की दर में तेज़ी से हो रही इस वृद्धि से स्पष्ट है कि ऐसा केवल शिक्षा नीति की वजह से संभव नहीं हुआ है वरन् पहाड़ी क्षेत्र की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक व सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि का भी हाथ है इसके पीछे।

शिक्षा और महिलाओं में कार्य

एक महत्वपूर्ण कारण है कि यहां बहुत ज़्यादा महिलाएं मेहनत-मज़दूरी के कामों में जुटी हुई हैं – घरेलू काम करने के अलावा महिलाओं की बड़ी भागीदारी परिवार को आर्थिक मदद के रूप में घर से बाहर काम करने में है। यह स्थिति भारत के अन्य उत्तरी प्रान्तों के बनिस्बत हिमाचल प्रदेश में कहीं अधिक है।*

इस स्थिति का संबंध पहाड़ी आर्थिक व्यवस्था के कुछ विशेष पहलुओं से भी जोड़कर देखा जा सकता है। अगर सरलीकृत स्तर पर ही सोचें तो एक ओर सघन जनसंख्या और भूमि के अभाव के कारण गंगा के मैदान में मज़दूरों की बहुतायत है, तो दूसरी ओर पहाड़ी अर्थव्यवस्था जहां ज़मीन और प्राकृतिक स्रोतों की कमी उतनी ज़्यादा नहीं है। इनमें पहली स्थिति में महिलाओं को चारदीवारी के अंदर ही रखा जाता है, और घरेलू काम के सिवाय वे बोनी या कटाई के समय ही घर से बाहर कार्य करती हैं। लेकिन पहाड़ी अर्थव्यवस्था में जहां जंगल है तथा चारागाह बहुतायत में हैं (कृषि योग्य भूमि ज़रूर कम है), वहां श्रमिकों की खपत अधिक हो सकती है और महिलाएं कहीं ज़्यादा बड़े पैमाने पर मेहनत-मज़दूरी में शरीक होती हैं। महिलाओं की श्रमिक के रूप में घर से बाहर भागीदारी की परंपरा से भी उनकी आर्थिक तथा सामाजिक ढांचों में हिस्सेदारी बढ़ी है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश या हरियाणा से अगर कोई हिमाचल प्रदेश जाए तो बस स्टेंड पर, सामाजिक जगहों पर, गांव से लेकर

** 'काम करने वाली' श्रेणी में आने वाली महिलाओं की संख्या का आंकड़ा 1991 की जनगणना के अनुसार, आंध्र प्रदेश को छोड़ दें तो किसी भी अन्य बड़े प्रदेश की अपेक्षा, हिमाचल प्रदेश में सर्वाधिक है। महिलाओं की श्रमिक के रूप में भागीदारी उत्तराखण्ड में हिमाचल प्रदेश से भी अधिक है।*

शहर तक चाय की दुकानों में, सिनेमा हॉल तथा सरकारी कार्यालय में भी महिलाओं की तादाद देखकर हैरानी होती है।

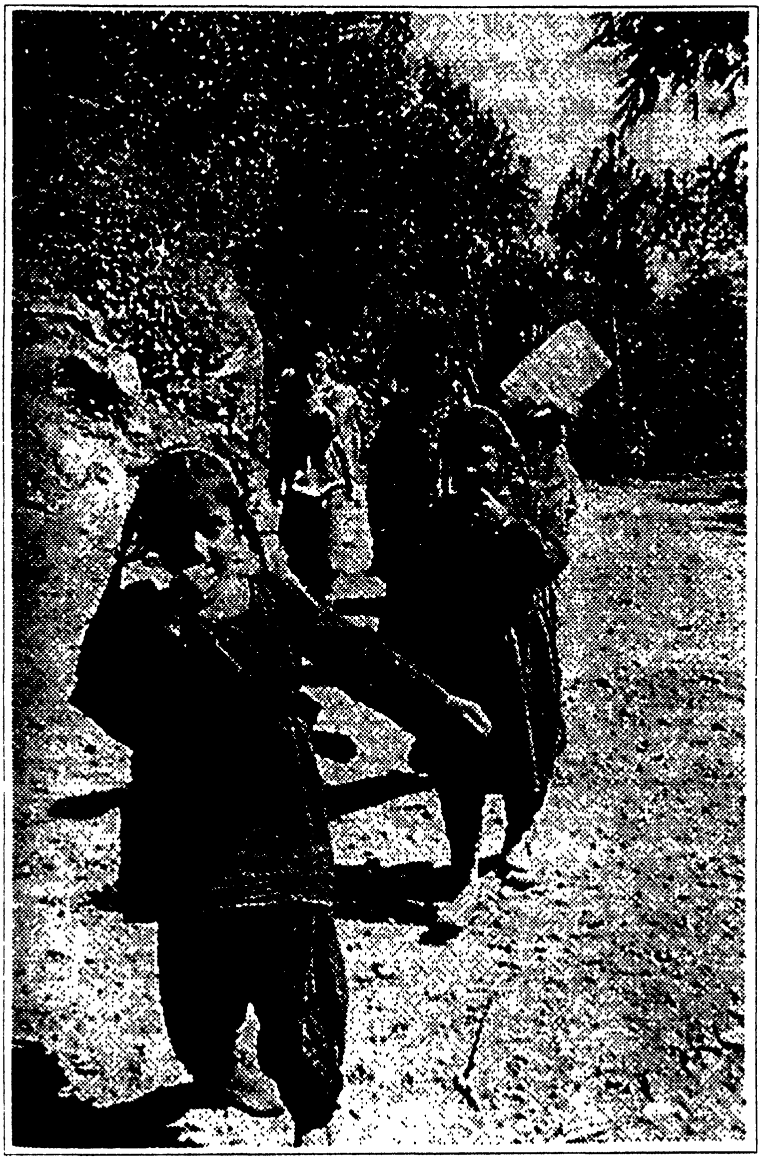

महिलाओं की मेहनत-मज़दूरी में ज़्यादा भागीदारी से यह अपने आप सिद्ध नहीं हो जाता कि महिलाओं और पुरुषों में समानता होगी। अगर रोज़गार की शर्तें विपरीत हों तो घर से बाहर काम करना महिलाओं के लिए अतिरिक्त बोझ बन जाता है। किन्तु महिलाओं के घर से बाहर काम करने के कई सकारात्मक सामाजिक प्रभाव हैं; उदाहरण के लिए परिवार में महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव में कमी आती है क्योंकि लड़कियों को इस माने में अच्छी नज़र से देखा जाता है कि वे बड़ी होकर परिवार चलाने में सहायता करेंगी। इसी प्रकार ऐसे घरों में बुज़ुर्ग महिलाओं की बात सुनी जाती है। कामकाजी श्रेणी में आ जाने से उनके लिए सामाजिक कामों में दखल देना संभव हो पाता है, यहां तक कि सक्रिय राजनीति में भी।

इसके और भी बहुतेरे सामाजिक असर हैं जो अभी भी अच्छी तरह से समझे नहीं गए हैं। उदाहरण बतौर, हिन्दुस्तान के विभिन्न क्षेत्रों में पाए

जाने वाली क्षेत्रीय विविधता का अध्ययन करने पर देखने को मिलता है कि जहां भी महिलाओं की मज़दूरी में भागीदारी ज़्यादा होती है वहां अपराध दर कम पाई गई है।

ऐसा समाज जहां महिलाएं अर्थव्यवस्था और सामाजिक जीवन में सक्रिय भागीदारी रखती हैं, शायद उस समाज से बुनियादी रूप से काफी फर्क होगा जहां उन्हें केवल घरेलू काम तक सीमित रखा जाता है।

जहां तक शिक्षा का सवाल है महिलाओं के घर से बाहर काम करने के बहुत सारे सकारात्मक आयाम हैं जो सीधे लड़कियों की स्कूली शिक्षा पर असर डालते हैं। एक तो महिलाओं के घर से बाहर मज़दूरी करने से परिवार को होने वाली आय के लड़कियों की शिक्षा पर खर्च होने वाले हिस्से में बढ़ोतरी होती है। 'प्रोब टीम' ने अपने अध्ययन के दौरान देखा कि हिमाचल में माता-पिता लड़कियों के रोज़गार के अवसर के प्रति अधिक आशान्वित होते हैं। और यह भी पाया कि वहां पर लड़कियां भी अधिक महत्वाकांक्षी होती हैं। दूसरा कारण यह भी है कि महिलाओं के घर से बाहर काम करने के कारण शिक्षा किसके लिए ज़रूरी है, यह निर्णय पुरुष केन्द्रित कम होते हैं।

तीसरी मुख्य बात यह है कि शायद कुल मिलाकर समाज पर भी इसी तरह का प्रभाव पड़ता है, जहां लड़कियों की शिक्षा की तरफ ज़्यादा ध्यान दिया जाता है (न सिर्फ पालकों द्वारा बल्कि नीतिगत स्तर पर भी), चूंकि महिलाएं सामाजिक दायरों में भी दखल रखती हैं। चौथा कारण यह है कि यदि महिलाएं घर से बाहर काम करने की आदी हैं तो उन्हें शिक्षण कार्य में भी आसानी से लगाया जा सकता है। हिमाचल प्रदेश में महिला शिक्षकों का औसत 40% है जबकि उत्तर भारत के अन्य प्रदेशों में केवल 20% है। स्वाभाविक है कि इससे लड़कियों की स्कूल जाने की संभावना बहुत बढ़ जाती है।

पांचवां कारण यह है कि इतनी बड़ी संख्या में महिलाओं के घर से बाहर काम करने से माता-पिता किशोरावस्था में पहुंची अपनी लड़कियों को पढ़ने के लिए बाहर भेजने से

** महिलाओं का घर से बाहर काम करना तथा लड़कियों की शिक्षा के सकारात्मक पहलू एक दूसरे से संबद्ध हैं, किन्तु इसके नकारात्मक पहलुओं को भी ध्यान में रखना होगा। विशेष तौर पर माता-पिता दोनों के घर के बाहर काम करने से घर की सबसे बड़ी लड़की पर घर के काम का पूरा बोझ आ जाता है। इस समस्या को हिमाचल प्रदेश के लोगों ने कैसे सुलझाया है (जबकि हिमाचल प्रदेश में बाल मज़दूरों की संख्या अत्यंत अधिक होती थी), यह एक अध्ययन का विषय है।*

हिचकिचाते नहीं हैं। जबकि उत्तरी भारत में कहीं भी और यह एक सामान्य समस्या है कि माता-पिता किशोरावस्था में पहुंच चुकी बेटियों को गांव से बाहर नहीं जाने देते।

अंत में यही कहा जा सकता है कि इतनी बड़ी तादाद में घर से बाहर काम करने से जहां महिला-पुरुष असमानता में कमी आती है, लड़कियों को स्कूल भेजने के प्रति एक सकारात्मक माहौल भी बनता है।*

वैवाहिक कायक्रम

हिमाचल प्रदेश के समाज का एक अनोखा पहलू है वहां के वैवाहिक रीति रिवाज़। इनका सीधा संबंध लड़कियों के स्कूल जाने से संबंधित निर्णयों पर पड़ता है क्योंकि उत्तर भारत में लड़कियों के बड़े हो जाने पर विवाह करवाना ही मुख्य लक्ष्य बन जाता है।

उत्तरी भारत में वैवाहिक रीति रिवाज़ में आम तौर पर निम्न पहलू समाहित होते हैं।

1. दुल्हन के परिवार को दहेज जुटाना पड़ता है।
2. शादी के बाद लड़की को उसके ससुराल के गांव में जाकर रहना पड़ता है, अक्सर दूर-दराज़ किसी गांव में।
3. यह अपेक्षा होती है कि महिलाएं अपने से ज़्यादा हैसियत वाले पुरुष से शादी करें उदाहरणतः दूल्हा ज़्यादा पढ़ा लिखा हो।

उदाहरणतः बहुत से गांवों में ग्राम पंचायत के अलावा सक्रिय महिला मंडल भी होते हैं। कई इलाकों में ऐसा भी है कि पुरुषों के गांव से बाहर काम की तलाश में निकल जाने से उनका स्थान महिलाओं ने ले लिया है तथा वे स्थानीय स्तर पर सक्रिय रूप से कार्यरत हैं। स्वाभाविक है कि इससे ग्रामीण समुदाय शिक्षा संबंधी मुद्दों की तरफ ध्यान देता है, खास तौर पर लड़कियों की शिक्षा के संबंध में।

राज्य शासन ने भी लड़कियों की शिक्षा को लेकर प्राथमिकताएं निर्धारित की; इन प्राथमिकताओं के मद्देनज़र यह समझना कठिन नहीं है कि दूसरे प्रांत जहां पुरुष-स्त्री रिश्ते और सामाजिक परिस्थितियां हिमाचल प्रदेश जैसी ही हैं, वहां की शिक्षा में ऐसे बदलाव देखने को क्यों नहीं मिलते। उदाहरण के तौर पर मध्य भारत में आदिवासियों में भी महिला मज़दूरों की संख्या बहुत है और संतुलित वैवाहिक पद्धतियां प्रचलित हैं। इन समुदायों को राजनीति ने हाशिए पर रख दिया है और इन्हें केवल अंशतः स्कूली शिक्षा सुविधाएं ही उपलब्ध हैं। परिणाम यह है कि आदिवासियों में बच्चों को स्कूल भेजने की मनोवृत्ति काफी कम है, और सबसे ज़्यादा असर लड़कियों की शिक्षा पर पड़ता है। परन्तु एक रोचक तथ्य यह भी है कि उन आदिवासी क्षेत्रों में जहां शिक्षा सुविधाओं का व्यापक विस्तार हुआ है, वहां स्थिति काफी फर्क है। ऐसा या तो वहां संभव हुआ है जहां लोगों के पास राजनैतिक मोल-भाव की ताकत थी जैसे कि उत्तर-पूर्व के अधिकतर क्षेत्रों में; या फिर ऐसे दक्षिण बिहार जैसे इलाकों में जहां ईसाई मिशनरियों ने काफी प्रयास किए हैं। इन सब समुदायों में स्कूल पैटर्न काफी हद तक हिमाचल प्रदेश जैसा ही है – जहां लड़के/लड़कियों का स्कूल जाना एक सामान्य घटना है तथा लड़के-लड़की के बीच विभेद बहुत ही कम होता है।

अब सवाल यह उठता है कि उत्तरी भारत के दूसरे राज्यों की तुलना में हिमाचल प्रदेश की सरकार ने ही प्राथमिक शिक्षा को इतना महत्व क्यों दिया। इसका कारण शायद यह है कि इन प्रदेशों में सामाजिक असमानताओं ने प्रजातंत्र को ही पटरी से उतार दिया है। आइए उत्तर प्रदेश की स्थिति पर विचार करें। विभिन्न अध्ययन यह बताते हैं कि उत्तर प्रदेश के गांवों में आज भी ज़मींदारी प्रथा की जड़ें गहरी हैं, ग्रामीण समाज विभक्त और अपराधों से सराबोर है। अभिजात्य वर्ग, गांव से लेकर राज्य शासन तक, हर स्तर पर संगठित रहता है और अपनी पकड़ बनाए रखता है। और इस वजह से राज्य शासन यानी सरकार को धरातल से कोई लेना-देना नहीं होता, और न उन्हें इस बात की कोई

परवाह होती है कि आम जनता की ज़रूरतें क्या हैं। दूसरी तरफ हिमाचल प्रदेश में जाति, वर्ग तथा लिंग भेद काफी कम है। इस तरह के सामाजिक ढांचे की वजह से, और इसलिए भी क्योंकि हिमाचल प्रदेश एक छोटा राज्य है, शायद राजनैतिक नेताओं और आम जनता के बीच दूरी थोड़ी कम है।

* *

हिमाचल प्रदेश की इस शैक्षिक क्रांति ने इस प्रदेश को लोगों के लिए एक रहने लायक जगह बना दिया है। इसके चलते इस क्षेत्र में गरीबी, मृत्युदर, बीमारी, कुपोषण तथा संबंधित समस्याओं में काफी कमी आई है। और इन सबके अलावा अपने आप में ऐसे बच्चों को देखना सुखद लगता है जो आत्मविश्वास से भरे हैं, जिन्हें स्कूल में सीखी बातों पर गर्व है, एवं जो भविष्य के प्रति काफी आशान्वित हैं।

ऐसे समय में जबकि ज़्यादातर अन्य प्रदेशों में बदहाली है तथा स्त्री-पुरुष असमानताएं बनी हुई हैं, ऐसे में इस सकारात्मक अनुभव से काफी कुछ सीखा जा सकता है। यह भी सही है कि हिमाचल प्रदेश की सफलता को अन्य स्थानों पर 'दोहराया' जाना संभव

नहीं है, चाहे सामाजिक संदर्भ जो भी हो। फिर भी इससे संभावनाएं पहचानने में तो मदद मिलती ही है कि आखिर 'पहल' किस दिशा में करनी चाहिए।

हिमाचल प्रदेश की शिक्षा क्रान्ति जेंडर समानता तथा विकास के बीच के संबंध की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित करती है। इसे शत-प्रतिशत अपना लेना नकल होगा किन्तु एक सार्थक शुरुआत के लिए इसे समझना भी अपने आप में काफी अर्थपूर्ण होगा। चाहे इस बात को कई बार दोहराया गया होगा फिर भी सच्चाई तो यही है कि हमने इसे समझने की अभी शुरुआत भर की है।

ज्यों द्रेज़: दिल्ली स्कूल ऑफ इकॉनोमिक्स में 'डेवलपमेंट इकॉनोमिक्स' के विज़िटिंग प्रोफेसर। पहले 'लंदन स्कूल ऑफ इकॉनोमिक्स' में इसी विषय के व्याख्याता रह चुके हैं।

मूल लेख अंग्रेज़ी में। **अनुवाद: रजनीकांत शर्मा**। होशंगाबाद में रहते हैं। साहित्य से लगाव, शौकिया अनुवादक।

यह लेख हाल ही में प्रकाशित 'पब्लिक रिपोर्ट ऑन बेसिक एज्यूकेशन इन इंडिया' (प्रोब) पर आधारित है। ज्यों द्रेज़ प्रोब टीम के एक सदस्य हैं।

इस लेख के सभी फोटो 'प्रोब रिपोर्ट' से लिए गए हैं।

प्राचीन भारत में रेखागणित

रामकृष्ण भट्टाचार्य

इस अंक से शुरू हुआ यह आलेख छह अंकों में प्राचीन भारत में रेखागणित के विभिन्न पहलुओं की विस्तृत जांच-पड़ताल करेगा।

रेखागणित की शुरुआत के बारे में उपलब्ध जानकारियों का विश्लेषण करते हुए विभिन्न संभावनाओं को टटोला गया है इस पहली कड़ी में।

I

रेखागणित शुरुआत कहां

प्राचीन भारत में रेखागणित की शुरुआत कैसे हुई यह जानने के लिए पहले हमें कुछ गलतफहमियों से मुक्त होना होगा। पहले तो इस सोच को बदलना होगा कि संसार में सिर्फ एक और सिर्फ एक ही रेखागणित होता है और वह है ग्रीक (यूक्लीडियन) रेखागणित। यदि ऐसा होता, तो हमें यह विश्वास करना पड़ता कि सर्वाधिक महत्वपूर्ण इमारतों और नियोजित शहरों का निर्माण करने वाले मिस्र निवासियों, बेबीलोनियाइयों और भारतीयों को रेखागणित की जानकारी नहीं थी; जबकि ग्रीकों ने किसी चमत्कार से शून्य में से रेखागणित को जन्म दे दिया।

यहां तक कि यूरोप और संयुक्त राज्य अमेरिका के श्रेष्ठ विद्वानों का भी यही ख्याल रहा है। प्रमुख वैज्ञानिकों और विज्ञान के इतिहासकारों द्वारा बार-बार यह दावा किया गया है कि पश्चिमी विज्ञान के विकास के लिए एक अति महत्वपूर्ण तत्व "ग्रीक

दार्शनिकों के द्वारा औपचारिक तार्किक प्रणाली (यूक्लीडियन रेखागणित में) का आविष्कार" रहा है। ऐसा अलबर्ट आइन्स्टीन ने कहा था।[1] इस पर जोसफ नीढम जो चीन के विज्ञान और सभ्यता के विशेषज्ञ हैं ने जवाब दिया:

"आइन्स्टीन खुद यह स्वीकार करने वाले पहले व्यक्ति होते कि वे चीनी, संस्कृत और अरबी संस्कृतियों में विज्ञान के विकास के बारे में कोई ठोस जानकारी नहीं रखते। वे सिर्फ यह जानते हैं कि उनमें आधुनिक विज्ञान का विकास नहीं हुआ था और इस अदालत में उनकी महान प्रतिष्ठा को साक्षी के रूप में पेश नहीं किया जाना चाहिए। इन सब मूल्यांकनों से मैं अपने आपको बिल्कुल सहमत नहीं पाता हूं।"[2]

यह ज़रूर है कि भारत में जो रेखागणित है वह ग्रीस के रेखागणित के समान नहीं है। पर हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि

- आधुनिक विज्ञान के जन्म के काफी पहले एशिया और यूरोप में प्राचीन काल में और मध्यकाल में विज्ञान था। और,
- एशियाई संस्कृतियों में विज्ञान सैद्धांतिक की अपेक्षा उपयोग आधारित ज़्यादा था, पर इससे वह कम वैज्ञानिक नहीं हो गया।

दूसरी ओर, यूक्लीडियन रेखागणित के मूल्य को ज़्यादा आंकने के बारे में जो कुछ नीढम ने कहा है वह चिंतन करने लायक है:

"हालांकि विज्ञान के इतिहासकार पश्चिमी जगत के प्रति की गई यूक्लीडियन रेखागणित की सेवा का प्रशस्तिगान करते नहीं थकते, मुझे बॉन के डॉ. पाल लोरेन्जन से 1949 में हुआ वार्तालाप खूब याद है, जिसमें उन्होंने यह मत ज़ाहिर किया था कि यूरोप के भले कि लिए जितना रेखागणित काफी होता उससे ज़्यादा रेखागणित यूरोप के पास था। इसमें शक नहीं कि रेखागणित आधुनिक विज्ञान के लिए अनिवार्य आधार था लेकिन उसका एक खराब असर यह हुआ कि वह हमें हर तरह के अमूर्त समयातीत स्वयंसिद्ध साध्यों पर विश्वास करने के लिए उकसाता है और कठोर तार्किक और धर्मशास्त्रीय कथनों को स्वीकार करने के लिए भी हमें उकसाता है।"[3]

इसलिए हम इस अनुमान के साथ शुरू करना पसंद करते हैं कि प्राचीन मिस्र, बेबीलोनिया और भारत के पास भी उनका अपना रेखागणित था जो राजगीरों और बढ़इयों के वास्तविक काम से लिया गया था।

राजगीर और बढ़ई क्यों? क्या रेखागणित मिस्र में ज़मीन नापने की क्रिया से पैदा नहीं हुआ जैसा कि माना जाता है? ग्रीक शब्द ज्योमेट्रिया

खुद यह सुझाता है। 'जे' (जिया का संक्षिप्त रूप) का अर्थ है पृथ्वी या भूमि, और 'मेट्रिया' का मतलब है मापन। इसी से इस शब्द का दूसरा अर्थ निकला – "गणित की वह शाखा जिसका संबंध बिंदुओं, रेखाओं, तलों और ठोस के लक्षणों और संबंधों से है।" (जैसा कि कन्साइज़ ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी परिभाषित करती है)।

पांचवीं सदी का ग्रीक इतिहासकार हेरोडोटस कहता है कि मिस्र ने यूनानियों को रेखागणित का ज्ञान दिया। कहा जाता है कि मिस्र के शासक सेसोस्ट्रिस (रेमेसिस द्वितीय लगभग 1347 ई.पू.) ने सभी मिस्रनिवासियों को बराबर-बराबर वर्गाकार भूमि देकर पूरे देश को मिस्र निवासियों में बांट दिया था और यही उसकी आय का स्रोत था। उसने इस आधार पर सालाना कर तय किया था। यदि किसी व्यक्ति की भूमि का कुछ हिस्सा नील नदी के बहाव में आ जाता था तो वह व्यक्ति राजा को बताता था कि उसकी भूमि का क्या हुआ। तब राजा अपने आदमियों को यह नापने भेजता था कि उस व्यक्ति की कितनी भूमि कम हो गई है जिससे भूमि के आकार के अनुसार कर तय किया जा सके। हेरोडोटस कहता है, "मेरा विचार है कि इससे यूनानियों ने भूमि को नापने (ज्यामेट्रिया) की कला सीखी।"[4]

इस अंश का अक्सर संदर्भ दिया गया है और इसे बहुधा उद्धरित किया गया है। यह कम-से-कम इस बात को प्रकट करता है कि यूनानियों ने यह दावा कभी नहीं किया कि रेखागणित उनका आविष्कार है। उन्होंने स्वीकार किया है कि रेखागणित मिस्र से आयातित की गई। तथापि, हमें हेरोडोटस के कथन के इस वाक्यांश पर भी ध्यान देना चाहिए, "मेरे विचार से।" वह सामान्य इतिहासकार था जो युद्ध और राजनीति में रुचि रखता था, विज्ञान में नहीं। उसके निष्कर्ष शायद बहुत विश्वसनीय नहीं भी हों।

ऐसा ही है पर, प्रोक्लस (410-485 ई.) भी यही कहानी कहता है। उसने यूक्लिड के एलीमेन्ट्स (300 ई.पू.) पर एक टीका लिखी और इस कारण वह जानता था कि वह किसके बारे में बोल रहा है। प्रोक्लस का बाद के काल का होना उसका मत मानने के रास्ते में बाधा नहीं बनना चाहिए। कहा जाता है कि उसे चौथी सदी ई.पू. में लिखे यूडेमस के गणित के इतिहास से यह जानकारी मिली थी। दुर्भाग्य से वह कृति अब उपलब्ध नहीं है।[5]

मिस्र भूमि मापन और इसलिए गणित का मूल स्रोत था – इस गाथा का समर्थन डायोजिनीस लेरटियस (लगभग 300 ई. पू.) द्वारा लिखित 'डेमोक्रिटस नामक दार्शनिक (लगभग 300 ई. पू.) की जीवनी' भी करती है। कहा जाता है कि अणु सिद्धांत के

इस प्रारंभिक प्रतिपादक ने पुरोहितों से रेखागणित सीखने के लिए मिस्र का भ्रमण किया था।[6]

डेमोक्रिटस एक महान चिंतक था पर किसी भी सूरत में वह विनम्र व्यक्ति नहीं था। उसकी कृति के बचे अंश (उसकी कोई भी पूरी कृति प्राप्त नहीं हुई है) में वह घोषित करता है:

"मैंने अपने ज़माने के किसी भी व्यक्ति से ज़्यादा भ्रमण किया है और बहुत विस्तार से जांच पड़ताल की है; और ज़्यादातर देश और इलाके देखे हैं और कई विद्वानों को सुना है और प्रमाणसहित शोध-प्रबंध लिखने में कोई भी मुझसे बढ़कर नहीं है। यहां तक कि मिस्र का तथाकथित आरपेडोनाप्टे भी नहीं। उसके साथ मैंने विदेशी भूमि में पांच साल गुज़ारे।"[7]

'आरपेडोनाप्टे' (ग्रीक भाषा में 'हरपेडोनाटाई', का शब्दिक अर्थ है – 'रस्सी खींचने वाले') प्राचीन मिस्र के भूमिमापक या सर्वेअर थे। ज्योमीटर्स को भी शायद इसी नाम से पुकारा जाता था। इसलिए भूमि मापन और गणित की इस शाखा (रेखागणित) के आपसी संबंध का भाषाशास्त्रीय और ऐतिहासिक प्रमाण है।

डेमोक्रिटस के खुद के शब्दों से ऐसा लगता है कि मिस्र के निवासियों ने यूक्लिड (300 ई. पू.) के बहुत पहले रेखागणितीय साध्यों की तार्किक व्यवस्था कर ली थी या यूक्लिड के पूर्ववर्तियों जैसे कि चिआस के हिप्पोक्रेट (लगभग 430 ई. पू.) ने भी ऐसा करने की कोशिश की थी।[8] इस प्रकार खुद यूनानियों की कृतियों के द्वारा यूनानी चमत्कार की गाथा रद्द हो जाती है।

II

रेखागणित: शुरुआत किसने की

जो भी हो, भूमिमापन से रेखागणित के जन्म की कहानी का समर्थन ऊपर उल्लेखित सभी विद्वान करते हैं। फिर हम भूमि मापने वालों के स्थान पर राजगीरों और सुतारों की बात क्यों करते रहे।

विख्यात पुरातत्वशस्त्री वी. गॉर्डन चाइल्ड (1892–1957) ने सबसे पहले रेखागणित के जन्म के बारे में प्रचलित मत को चुनौती दी। वे बेबीलोनिया और मिस्र के विद्यमान दस्तावेज़ों की समीक्षा करने के बाद 1936 में निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुंचे:

"हमारे पास जो प्रमाण हैं उनसे इस सिद्धांत का समर्थन नहीं होता कि सटीक रेखागणित मिस्र या बेबीलोनिया में भूमि मापन से उत्पन्न हुई।"[9]

चाइल्ड ने ऐसा क्यों कहा? वे यह अस्वीकार नहीं करते कि ये दस्तावेज़ बुनियादी रेखागणित का ज्ञान प्रदर्शित

करते हैं, खासकर 'खेतों में बोने के लिए लगने वाले बीज और उनसे प्राप्त होने वाले लगान के अनुमान' के लिए खेतों के क्षेत्रफल के सिलसिले में। लेकिन वे कहते हैं – "ऐसे अनुमानों के लिए पूरी तरह सटीक होना ज़रूरी नहीं था; कारिंदा मोटे तौर पर सिर्फ यह जानना चाहता था कि प्रत्येक खेत के लिए कितना उत्पादन माना जाए; कर एकत्र करने वाले अधिकारी को संभावित फसल का एक मोटा अनुमान ही चाहिए था।"[10]

तो फिर सटीक विचारों और पूर्णत: सही मापन की ज़रूरत किसे होगी? चाइल्ड का कहना था, वास्तुकारों और इंजीनियरों को। "अपना काम संपन्न करने के लिए बहुधा उन्हें ही अत्यंत शुद्ध हिसाब की ज़रूरत थी। पिरामिड का सटीक होना कर्मकांड की दृष्टि से अत्यंत महत्व का था। मिस्र के लिपिकों ने पिरामिड के एक खंड का आयतन जानने के लिए सही सूत्र खोज निकाला और उसका उपयोग किया।"[11] चाइल्ड अपने मत के समर्थन में मॉस्को पेपीरस में प्राप्त गणित के एक सवाल का उल्लेख करते हैं।

डब्लू. डब्लू. सॉयर, अपनी रोचक किताब 'मेथेमेटिशियन्स डिलाइट' (1943) में भी इसी निष्कर्ष पर स्वतंत्र रूप से पहुंचते हैं, (किसी भी रूप में वे चाइल्ड का उल्लेख नहीं करते)। वे ज़ोर देकर कहते हैं, "शुरुआती गणितज्ञ थे व्यावहारिक लोग यानी सुतार और भवन निर्माता।"[12]

उन्होंने अंग्रेज़ी भाषा से कुछ रोचक भाषाशास्त्रीय प्रमाण की ओर ध्यान खींचा। उन्होंने कहा, "इस तथ्य ने जियोमिति में प्रयुक्त किए जाते शब्दों पर अपनी छाप छोड़ी है। 'सीधी रेखा' (स्ट्रेट लाइन) क्या है? यदि 'सीधी' (स्ट्रेट) शब्दकोष में देखें तो आप पाएंगे कि यह 'स्ट्रेच्ड' (खिंचा हुआ) के लिए पुराने शब्द से आया है; जबकि 'लाइन' (रेखा) शब्द 'लिनेन' या 'लाइन थ्रेड' के समान ही है। तो एक स्ट्रेट लाइन यानी स्ट्रेच्ड लिनेन थ्रेड यानी खिंचा हुआ सूती धागा है – जैसा कि कोई भी आलू खोदने वाला या ईंट जमाने वाला जानता है।"[13]

इस तरह चाइल्ड द्वारा उल्लेखित वास्तुकारों और इंजीनियरों के अलावा सुतारों को भी रेखागणित को जन्म देने में योगदान करने वाले मान सकते हैं।

एक विख्यात भौतिकशास्त्री और 'साइंस इन हिस्ट्री' पुस्तक के लेखक जे. डी. बरनाल (1901–71) ने चाइल्ड और सॉयर के मतों का पूरी तरह समर्थन किया है। उन्होंने कहा:

"संभवत: भूमि मापन के पहले ही निर्माण के काम ने रेखागणित की नींव स्थापित होने में योगदान दिया। शुरू में कस्बों की इमारतें सिर्फ गांव के झोपड़ों जैसी ही थीं जो लकड़ी

मिस्त्र के कारीगर

अ.

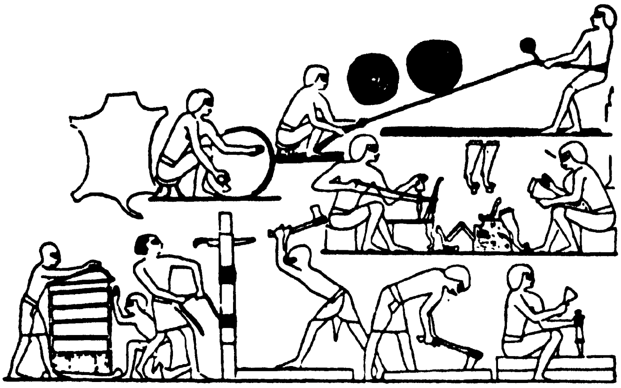

ब.

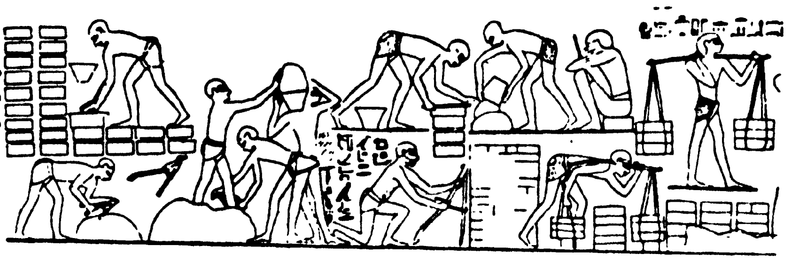

स.

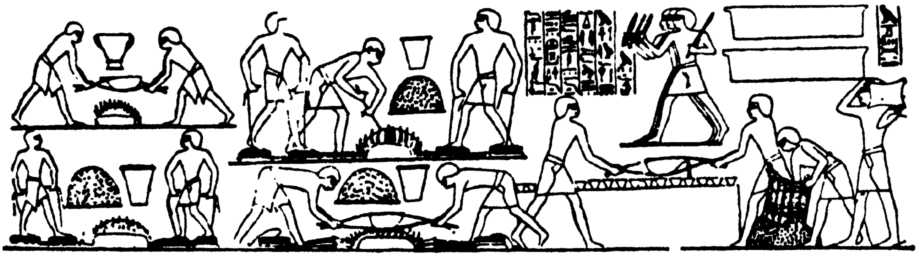

द.

और घास-फूस के बनते थे। नगर की सीमित जगह में आग के बढ़ते खतरे को देखते हुए इनकी जगह मिट्टी का इस्तेमाल एक बड़ा सुधार था। अगला जो कदम उठा वह इससे भी ज़्यादा महत्वपूर्ण था: सांचे में बनाकर, धूप में सुखाई गई ईंट। ईंट संभवत: कोई मौलिक खोज नहीं थी। शायद वह पहाड़ों में घर बनाने के लिए प्राकृतिक रूप से मिलने वाली पत्थर की सिल्लियों का मिट्टी में बना प्रतिरूप था। घाटियों में पत्थर न होने के कारण मिट्टी से काम चलाना पड़ता था।

ईंटें तभी सुविधा से एक के ऊपर एक जमाई जा सकती हैं जब वे आयताकार हों। और उनके उपयोग से समकोण का विचार और सीधी रेखा का उपयोग शुरू हुआ। यानी स्ट्रेट लाइन – बुनकर या रस्सी बनाने वाले की खिंची हुई रेखा।''[11]

बरनाल एक चित्र प्रस्तुत करते हैं जिसमें 1470 ई. पू. के लगभग की रस्सी बनाने, ईंट बनाने, आदि की मिस्र की तकनीकें बताई गई हैं।

गणित का जन्म स्थान कहे जाने वाले मिस्र का यह ऐतिहासिक प्रमाण निष्कर्षत: यह प्रमाणित करता है कि रेखागणित राजगीरों की ज़रूरतों के कारण आवश्यक हो गई थी, न कि कारिंदों की ज़रूरतों के कारण। दस्तकारों के नाप में सटीकता की ज़रूरत थी।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उसके आधार पर हम यह धारणा त्याग सकते हैं कि ग्रीक शब्द ज्यामेट्रिया की व्युत्पत्ति गणित की इस शाखा के उद्गम की पूरी कहानी बताती है।

बेंजामिन फेरिंग्टन अपनी 'ग्रीक साइंस' में लिखते हैं कि विज्ञान की हर शाखा का उद्गम लोगों की व्यावहारिक ज़रूरतों से हुआ है और रेखागणित उसमें अपवाद नहीं है।[15] यूक्लिड ने जिस प्रकार, व्यवहार से अलग करके, राजगीर और सुतार के ज्ञान को व्यवस्थित रूप दिया है, उससे उसके विकास का सही क्रम प्रकट नहीं

◄ **मिस्र के कारीगर:** आज से लगभग साढे तीन हज़ार साल पहले विविध कामों में जुटे हुए मिस्र के कारीगर। **अ.** रस्सी बटाई तथा बढ़ईगिरी का काम करते कारीगर। इसमें कारीगरों द्वारा इस्तेमाल किए जा रहे औज़ारों पर गौर करें। **ब.** ईंटों को बनाने का काम बड़े पैमाने पर किया जा रहा है। साथ ही विविध औज़ारों की मदद से भवन का निर्माण कार्य भी चल रहा है। **स.** कांसे को ढाल कर विविध सामान बनाते हुए कारीगर। **द.** बेशकीमती धातुओं से आभूषण बनाने वाले कारीगर। साथ ही एक तराज़ू की मदद से तौलने का काम भी चल रहा है। गौर करें कि इन चित्रों में तराज़ू और ईंटों को ढोने वाले कांवर में काफी समानता है।

होता। दूसरी ओर, समतलीय रेखागणित (यूक्लिड के एलीमेंट्स के मॉडल की तर्ज़ पर) की पाठ्यपुस्तकें हमें सिर्फ यूनानियों के नतीजों के बारे में बताती हैं – परंतु यह नहीं कि यूनानी ये सब बेबिलोन और मिस्र के कारीगरों की उपलब्धियों के आधार पर कर पाए। गॉर्डन चाइल्ड कहते हैं कि – "बेबिलोनियाई और मिस्री लोगों ने रेखागणित के नियम प्राप्त कर लिए थे जो एकदम ठीक थे किंतु वे अमूर्त जगह (Space) के गुणधर्मों से अनुभव निरपेक्ष ढंग से नहीं निकाले गए थे, जैसा कि यूक्लिड की रेखागणित में होता है। ऐसे 'शुद्ध रेखागणित' के लिए कोई साक्ष्य नहीं मिलते।"[16]

सॉयर शुद्ध तार्किक प्रणाली के रूप में रेखागणित को पढ़ाए जाने के तरीके की आलोचना करते हैं जिसमें बिंदुओं, रेखाओं, आकृतियों की परिभाषा से शुरू करके, स्वयं सिद्ध कथनों से चलते हुए, प्रमेयों और सवालों तक जाते हैं। उनके मत में, "बच्चों से यह उम्मीद करना अन्याय है कि वे उस रूप में रेखागणित का अध्ययन करना शुरू कर दें जैसा हमें यूक्लिड ने दिया था।"[17] रेखागणित ईसा के पहले चौथी सहस्राब्दी में पिरामिड बनाने की कला के साथ शुरू हुई। इस प्रकार मिस्र में महान पिरामिडों के निर्माण (3900 ई. पू.) और यूक्लिड के एलीमेंट्स (300 ई. पू.) के बीच करीब 3600 वर्षों का अंतर है। वे कहते हैं, "हम मानव के प्रयासों के 3600 वर्षों को इतनी आसानी से नहीं लांघ सकते।"

सॉयर कहते हैं, "रेखागणित सीखने

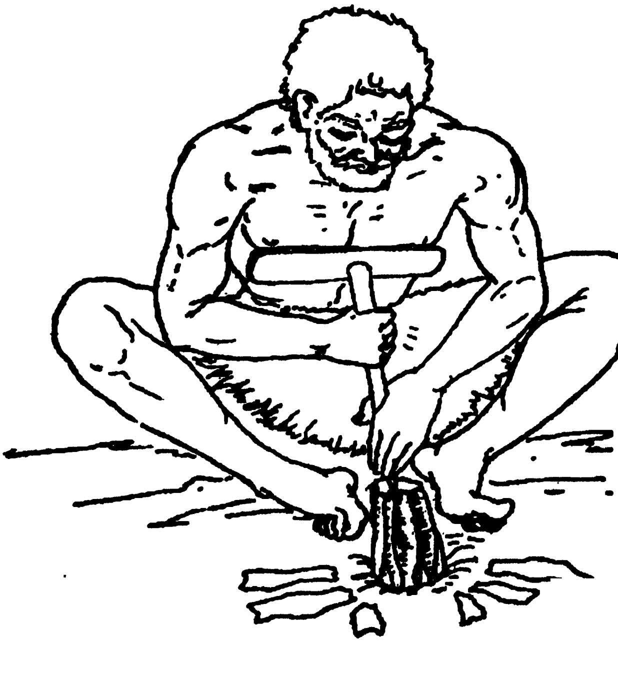

पाषाण कालीन कारीगर पत्थर से औज़ार बनाता हुआ।
अगले पृष्ठ पर पाषाण कालीन औज़ारों में से कुछ रेखागणितीय आकृतियों को दिखाया गया है।

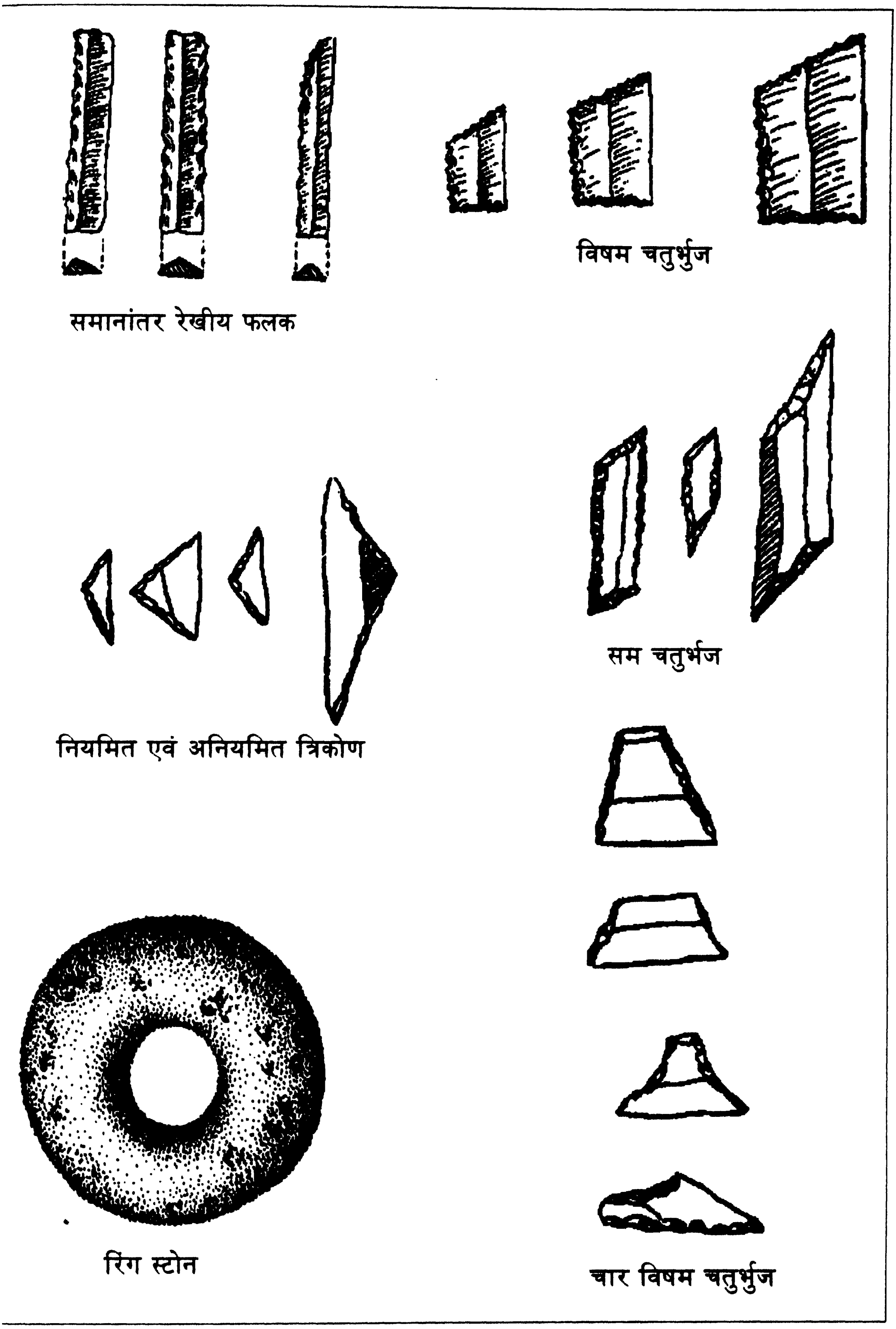
समानांतर रेखीय फलक
विषम चतुर्भुज
नियमित एवं अनियमित त्रिकोण
सम चतुर्भज
रिंग स्टोन
चार विषम चतुर्भुज

का सबसे अच्छा तरीका उस रास्ते पर चलना है जिस पर मानव जाति चली – चीज़ें करो, चीज़ें बनाओ, चीज़ों को देखो, चीज़ें व्यवस्थित करो और फिर चीज़ों के बारे में तर्क करो।" असल में इसी तरीके से रेखागणित विकसित हुआ। ग्रीक रेखागणित ही संसार में एकमात्र रेखागणित नहीं है। 'अमूर्त जगह' की अवधारणा बनने के लिए, पत्थर की फर्शियों, ईंटों आदि ठोस चीज़ों के साथ कुछ प्रयोग की पूर्व पीठिका की ज़रूरत है। इसलिए शुरुआती श्रेय रेखागणित संभव बनाने वाले विद्वानों से ज़्यादा श्रमिकों को दिया जाना चाहिए।

III

हड़प्पा संस्कृति में रेखागणित

हमें इस गलतफहमी को भी दूर करना होगा कि भारत का इतिहास वेदों से शुरू होता है। वैदिक काल (1800 ई. पू. से 500 ई. पू.) के हज़ारों साल पहले ही इस उपमहाद्वीप में लोग रहते आए हैं। यहां पाषाण काल से लोग रहते आए हैं और संस्कृति को आगे बढ़ाते रहे हैं।

हालांकि ठोस चीज़ों को देखना, व्यवस्थित करना और बनाने का सिलसिला पुरापाषाण काल से चला आ रहा है, अमूर्त ज्यामितीय आकृतियों का उपयोग उत्तर पाषाणकाल से देखने को मिलता है। उत्तर पाषाण काल के औज़ारों में समानान्तर रेखाएं, त्रिकोण, ट्रेपिज़, समचतुर्भुज, वृत्त आदि आकृतियों का इस्तेमाल है यानी वे लोग इन आकृतियों को पहचानते थे व इनके गुण एवं उपयोग से भी वाकिफ थे। इस काल के शैलचित्रों व अन्य अवशेषों पर बनाई कलाकृतियों में भी ज्यामितीय आकृतियों का काफी इस्तेमाल किया गया है।

इन उदाहरणों से यही निष्कर्ष निकलता है कि रेखागणित की शुरुआत औज़ार बनाने वालों व चित्रकारों से हुई है। उल्लेखनीय है कि केवल भारत में ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में यही क्रम पाया जाता है।

वैदिक बस्तियां बसने के काफी पहले भारत में शहरी सभ्यता के विकसित केन्द्र थे। हमारा मतलब हड़प्पा संस्कृति के लोगों से है। पुरातत्वविद लगभग 2500 ई. पू. की सिन्धु घाटी सभ्यता को हड़प्पा संस्कृति कहते हैं। यह सभ्यता वर्तमान अफगानिस्तान, पाकिस्तान और भारत में दूर-दूर तक फैली थी। यद्यपि हम एक सांस में मोहंजोदड़ो और हड़प्पा का उच्चारण करते हैं, यह याद रखना हितकर होगा कि वे एक-दूसरे से करीब 592 किलोमीटर दूर हैं। इसी प्रकार गुजरात में खम्भात की खाड़ी के उत्तर में स्थित लोथल और हिमालय की तराई में

रोपड़ के बीच की सीधी दूरी लगभग 1152 किलोमीटर है।

इतनी सारी खुदाइयों और विस्मयकारी खोजों के बावजूद ये स्थल मूक साक्षी ही हैं। सिंधुलिपि अभी भी संतोषजनक ढंग से नहीं पढ़ी गई है।

वैसे सिंधु लिपि को पढ़ लिया जाए तो भी शायद बहुत ज़्यादा मदद नहीं मिलेगी क्योंकि ज़्यादातर शब्द सीलों पर अंकित हैं – इनसे रेखागणित के बारे में जानकारी मिलना कठिन है। फिर भी खुदाई में कई औज़ारों के अवशेष मिले हैं जो हमारे काम के हैं। वे हमें एक बहुत रोचक कहानी सुनाते हैं। हमें उसका पुनर्निर्माण करना है।

लोथल में हुई खुदाई में हमें राजगीर के कई औज़ार मिले हैं।[18] पहला औज़ार मिट्टी का बना साहुल (Plum-bob) है। इस तरह के दो औज़ार हैं – एक में ऊर्ध्वाकार (Vertical) छेद है जिससे धागा पिरोकर उसे लटकाया जाता था; और दूसरे में सिरे पर घुंडी में बने क्षैतिज छेद से धागा पिरोकर लटकाया जाता था। घुंडी के ऊपर एक छिद्रयुक्त बेलन (Perforated Terracota Cylinder) रखा जाता था।

इसी प्रकार, शंख की एक पोली बेलनाकार चीज़ मिली है जिसे कम्पास के रूप में पहचाना गया है। उसमें छेद हैं – चार ऊपर और चार नीचे। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि यह औज़ार आधुनिक Cross Staff का काम करता था। यह "45 डिग्री, 90 डिग्री, 180 डिग्री और 360 डिग्री तक के अन्य कोण बनाने के लिए काम में लाया जा सकता था। आमने-सामने के छेदों से दिखने वाले बिंदुओं को जोड़ने से बनी सीधी रेखाएं एक दूसरे को 45 डिग्री पर काटती हैं।"

हाथी दांत का बना एक पैमाना भी मिला है (5 x 0.6 इंच)। उसमें 1.81 इंच को सत्ताइस हिस्सों में बांटा गया है। और इस प्रकार प्रत्येक भाग औसतन 0.0689 (0.67) इंच का है। ऐसे बीस भाग मोहंजोदड़ो में पाए गए शंख पैमाने पर अंकित दो वृत्तों के बीच की दूरी के लगभग बराबर हैं।

मोहंजोदड़ो पैमाना भी उल्लेखनीय है। पांच भागों के बीच की दूरी 1.32 इंच है जो लोथल पैमाने के बीस भागों की बीच की दूरी 1.338 (1.34) इंच के लगभग समान है। मोहंजोदड़ो पैमाने के दस भाग मिलकर 2.64 इंच के हैं, जो शायद सिंधु घाटी में मापने की बुनियादी इकाई रहा होगा। लोथल पैमाने के पहले दस भाग 0.689 इंच की दूरी दिखाते हैं – यानी करीब 0.7 इंच। बाद के समय की परंपरागत नाप 'अंगुल' है जिसका उल्लेख कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी है।[19] रोचक बात यह है कि यह नाप भी 0.7 इंच के बराबर ही है। "इस प्रकार लोथल पैमाना मोहंजोदड़ो पैमाने

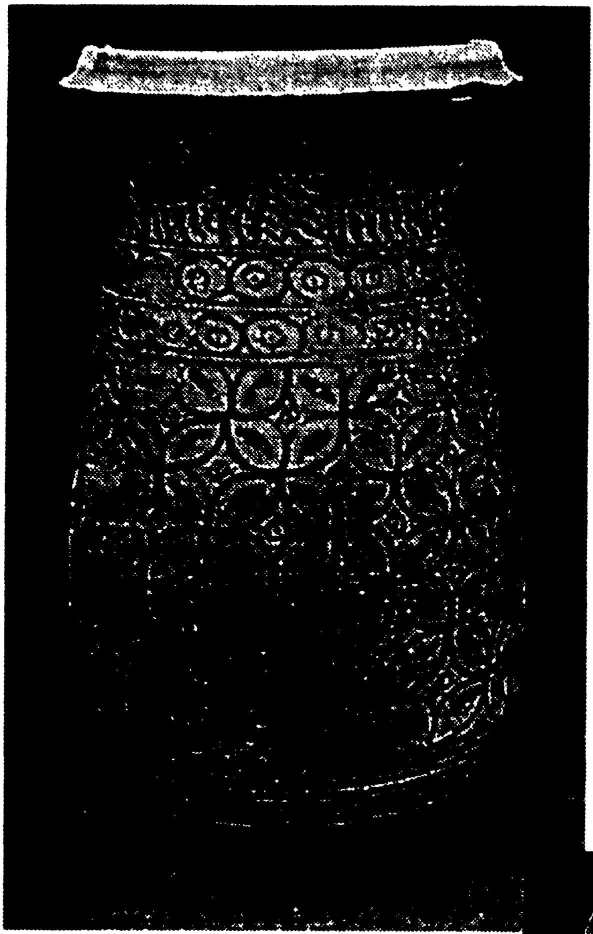

हड़प्पाकालीन एक मिट्टी का बर्तन जिस पर रेखागणितीय आकृतियों से नक्काशी की गई है।

भगवानपुरा से मिले चित्रित धूसर मृद भांड के कुछ टुकड़े। इन पर बनाए गए वृत या वृत के भीतर बनाई गई आकृतियों के बारे में ऐसा माना जाता है कि इन्हें परकार जैसे किसी उपकरण से बनाया गया होगा।

कालीबंगा — मोहंजोदड़ो-हड़प्पा कालीन सभ्यता का एक नगर। आज से लगभग चार हज़ार साल पहले के इस शहर में सलीके से बने एक मकान का फर्श और दीवारें आज भी मौजूद हैं।

कालीबंगा में खुदाई के दौरान इस मकान के फर्श पर लगाई गई टाइल्स मिलीं। इनके पैटर्न को देखकर लगता है कि पहले टाइल्स को फर्श पर लगाया गया होगा और बाद में इन पर वृत बनाए गए होंगे। इन वृत्तों की सटीकता को देखते हुए यह माना जाता है कि इन्हें ज़रूर परकार जैसे किसी उपकरण से बनाया गया होगा।

की तुलना में परंपरागत भारतीय माप-विज्ञान के कहीं ज़्यादा नज़दीक है।" यह भी संभव है कि लोथल में दूरी नापने के लिए दो प्रकार के माप उपयोग में लाए जाते थे – एक सील जैसी छोटी चीज़ों के लिए और दूसरा इमारतें नापने के लिए।

1934 की खुदाई में कई चित्रांकन मिले जिन्हें देखकर ई. जे. एच. मैके आश्चर्यचकित हुए क्योंकि इनको बनाने के लिए "वस्तुत: एक यंत्र का इस्तेमाल किया गया होगा।"[20] कुछ चित्र आयताकार घेरे मे बने हुए हैं, कुछ वृत्त में और कुछ बिना किसी वृत्त के। इनमें लगातार कई चार पंखुडियों वाले डिज़ाइन बने हैं। इनकी सटीकता परकार और पैमाने के उपयोग के बिना संभव नहीं है। ये नमूने 2500 ई. पू. के हैं।

लोथल में निजी मकानों में मिट्टी की ईंटों के चबूतरे पाए गए हैं। चबूतरे योजना और नाप में आयताकार हैं। गोल गड्ढे भी हैं। "चाहे ये यज्ञ से संबंधित थे या नहीं"(जैसा कि एस. आर. राव का विश्वास था)[21], यह तथ्य साफ है कि वहां के लोग पूर्ण रूप से सही वृत्त और आयत की रेखागणितीय आकृतियों से परिचित थे।

ज़्यादा महत्व की बात यह है कि इस सभ्यता के सभी शहरी-केन्द्रों में ईंटें मिली हैं। प्रसिद्ध पुरातत्वशास्त्री के. एस. दीक्षित का मत था:

"मोहंजोदड़ो और हड़प्पा में मकान बनाने में इस्तेमाल की गई ईंट अच्छी तरह पकाई हुई हैं और उनके अनुपात भी बेहतरीन हैं। पक्की ईंट का सबसे प्रचलित आकार 11 इंच x 5.25 इंच या 5.5 इंच और मोटाई 2.25 इंच से 2.75 इंच है। किसी भी अन्य काल के भवन निर्माताओं की तुलना में हडप्पा के लोगों ने अत्यंत व्यावहारिक आकार का उपयोग किया। और यह उल्लेखनीय है कि ऐतिहासिक काल में ईंटों का विकास अशोक के समय की ईंटों से शुरू होता है जो सिंधु घाटी की ईंटों से दो गुनी लंबी और चौड़ी थीं। ईंट का आकार कुषाण, गुप्त और मध्यकाल में क्रमश: कम होने लगता है पर उन सबमें लंबाई, चौड़ाई और मोटाई अनुपात 1:1/2:1/4 कभी नहीं रहा जो जुड़ाई को सर्वाधिक मज़बूती प्रदान करता है।[22]

सिर्फ दीक्षित ही नहीं अन्य पुरातत्ववेत्ता भी हड़प्पा संस्कृति की ईंटों के अनुपात की तारीफ करते हैं। जॉन मार्शल ने कहा है:

"दीवारें मिट्टी के गारे से जुड़ी ठोस ईंटों से बनी हैं। उपयोग में लाई गई ईंटों का आकार 11 इंच x 5.5 इंच x 2.75 इंच है यानी कि लंबाई, चौड़ाई और मोटाई का अनुपात 4 : 2 : 1 आता है जो कि मज़बूत जुड़ाई के लिए ज़्यादा उपयुक्त है।"[23]

दीक्षित एक और रोचक मत देते हैं:

"(ईंटों का) आदर्श अनुपात पूरी तरह से भुला नहीं दिया गया था, यह इस बात से प्रकट होता है कि बाद का एक ग्रंथ (कश्यप संहिता) ईंटों के लिए 10 अंगुल लंबाई, 5 अंगुल चौड़ाई और 2.5 अंगुल मोटाई का अनुपात सुझाता है; लेकिन इसमें संदेह है कि ऐतिहासिक काल में राजगीरों ने कभी इसका पालन किया हो। जो भी हो यह स्पष्ट है कि सिंधु सभ्यता की पकी ईंट भारत में अतुलनीय है और रोमन काल के आगमन के पहले सुमेर, मिस्र और अन्य देशों में की गई कोशिशों से भी उसकी तुलना नहीं की जा सकती है।"[24]

इस प्रकार रेखागणित के उद्भव के लिए दो बुनियादी तत्व – राजगीर के औज़ार और ईंट निर्माण – 2500 ई. पू. में भी भारत में विद्यमान थे।

सिंधु घाटी सभ्यता का खात्मा क्यों हुआ यह अभी भी विवाद का विषय बना हुआ है। बहुत-सी परिकल्पनाएं सुझाई गई हैं – हम अभी उनकी चर्चा नहीं करेंगे। परन्तु इतना ज़रूर है कि पुरातात्विक खोजों में एक किस्म की गिरावट दिखती है। हड़प्पा सभ्यता के अंतिम दौर में शहर उतने नियोजित ढंग से बनते नहीं दिखते, घर बनाने के लिए पुरानी ईंटें दोबारा इस्तेमाल की जा रही थीं। शहरी सभ्यता में गिरावट के साथ-साथ कारीगरी और कला का ज्ञान भी खत्म हो गया।[25]

तथापि, काफी समय बीतने के बाद हमारे पास भारत में रेखागणित के पुनर्जन्म के लिखित अभिलेख मिलते हैं। वे हैं *शुल्ब या शुल्व सूत्र*, जिसका शाब्दिक अर्थ है 'रस्सी से संबंधित सूत्रों का संग्रह'। यह कृति 600 ई. पू. की है।

रामकृष्ण भट्टाचार्य: आनंद मोहन कॉलेज, कलकत्ता के अंग्रेज़ी विभाग में रीडर तथा कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर अंग्रेज़ी अध्ययन पाठ्यक्रम में अतिथि लेक्चरर। विज्ञान लेखन में रुचि।

अनुवाद: सुरेश मिश्र: इतिहास के पूर्व प्राध्यापक। भोपाल में रहते हैं।

इस लेख की पाद टिप्पणियां और संदर्भ

1. जोसेफ नीडम, द ग्रेट टाइट्रेशन, साइंस एण्ड सोसायटी इन ईस्ट एण्ड वेस्ट, लंदन: जॉर्ज एलन एंड अनविन, 1979, पृ 43 में उद्धरित।
2. नीडम पृ. 23–44
3. वही, पृ. 288 एन-2.
4. हेरोडोटस, हिस्ट्रीज़, बुक–2.109 अनुवाद ए. डी. कोडले, लंदन: विलियम हाइनमेन (लोएब क्लासिकल लायब्रेरी), 1966, पृ. 399.
5. बेन्जामिन फेरिन्गटन, ग्रीक साइंस, हरमोन्सवर्थ: पेंगुइन बुक्स, 1966, पृ. 210
6. डायोजिनीज़ लीर्टियस, लाइव्स आफ एमिनेंट फिलॉसोफर्स, नौ.35, अनुवाद आर. डी. हिक्स, लंदन: विलियम हाइनमेन (लोएब क्लासिकल) जिल्द 2, 1925, पृ. 445 जी. एस. किर्क और जे. ई. रेवेन, द प्रिसोक्रेटिक फिलासफर्स कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1966, पृ. 404 एन.।
7. फ्रेगमेंट 199 (डायल्स–क्रेंज़) अनु. केथलीन फ्रीमेन, एन्सिला टु द प्रिसोक्रेटिक फिलॉसोफर्स, ऑक्सफोर्ड: बेसिल ब्लैकवेल, 1962, पृ. 119.
8. डेविड यूजीन स्मिथ, हिस्ट्री ऑफ मैथेमेटिक्स, न्यूयॉर्क: डोवर पब्लिकेशन्स, जिल्द एक, 1958, यूक्लिड के पूर्ववर्ती लोगों के लिए, देखिए चार्ल्स सिंगर, ए शॉर्ट हिस्ट्री आफ साइन्टिफिक आइडियाज़ टु 1900, लंदन: इंग्लिश लैंगवेज बुक सोसायटी, 1964, पृ. 63–64.
9. वी. गॉर्डन चाइल्ड, मैन मेक्स हिमसैल्फ, लंदन: वाट्स एण्ड कं.,1956 (1936), पृ.207.
10. वही, पृ. 205
11. वही, पृ. 207
12. डब्लू. डब्लू. सायर, मेथेमेटिशियन्स डिलाइट, हरमोन्ड्सवर्थ: पेंगुइन बुक्स, 1976 (प्रथम प्रकाशित 1943), पृ. 13.
13. वही.
14. जे. डी. बरनाल, साइंस इन हिस्ट्री, ऑल इंडिया पीपुल्स साइंस नेटवर्क, दिल्ली पृ. 112.
15. बेन्जामिन फेरिंग्टन, पृ. 210
16. चाइल्ड, पृ. 209.
17. सायर, पृ. 17 आगे के उद्धरण इसी पृष्ठ से हैं।
18. आगे जो कुछ लिखा है उसके लिए मैं पूरी तरह एस. आर. राव, लोथल, ए हड़प्पन पोर्ट टोएन (1955–62), नई दिल्ली: ए.एम.आई., 1979, पृ. 75 पर अवलंबित रहा हूं।
19. द कौटिल्य अर्थशास्त्र, सं. और अंग्रेज़ी अनुवाद आर. पी. कांगले, बम्बई: बम्बई विश्वविद्यालय, भाग एक, 1969, पृ. 71, भाग दो, 1972, पृ. 188, अंगुल से पहले के कुछ अन्य माप भी हैं किंतु वे सिर्फ 'दार्शनिकतापूर्ण' हैं और उन्हें उन्नत यंत्रों के बिना मापा नहीं जा सकता।
20 ई. जे. एच. मैके, 'फरदर एक्सकेवेशन्स एट मोहंजोदड़ो', जर्नल ऑफ द रॉयल सोसायटी ऑफ आर्ट्स, जिल्द 31, 1934, पृ. 222.
21. एस. आर. राव (एन22), पृ. 218, उनकी पुस्तक लोथल एण्ड द इण्डस सिविलिज़ेशन, बम्बई: एशिया पब्लिशिंग हाउस, (1973), पृ. 139–41 भी देखें।
22. के. एन. दीक्षित, प्रिहिस्टॉरिक सिविलिजेशन ऑफ द इण्डस वैली (सर विलियम मेयर लेक्चर्स, 1935), मद्रास: मद्रास विश्वविद्यालय, 1939, पृ. 15–16.
23. जॉन मार्शल, 'हड़प्पा एण्ड मोहंजोदड़ो' (1926) पोसेल, पृ. 184.
24. दीक्षित, पृ. 16, तथापि, मैके ने मिस्र, उर और वर्का की जुड़ाई के काम में कुछ समानता पायी। फरदर एक्सकेवेशन्स एट मोहंजोदड़ो, नई दिल्ली: भारत सरकार, जिल्द एक, 1938, पृ. 428 और 649.
25. जार्ज एफ. डेल्स, 'द डिक्लाइन ऑफ द हड़प्पन्स' (1966) व पोसेल (एन20), पृ. 311.

कहाँ है मेरे दोस्त का घर

प्रदीप गोठोस्कर

कक्षा में आज शोरगुल इतना अधिक था कि शायद ही आप अपनी आवाज़ सुन पाते। लेकिन ऐसा हल्ला-गुल्ला तो प्राय: हर स्कूल में होना स्वाभाविक ही है। जब कभी शिक्षक कक्षा में देर से आते या पीरियड खाली होता तो बच्चे शोर मचाने के लिए जैसे स्वतंत्र हो जाते थे। वैसे कक्षा का हर मिनट अपनी-अपनी तरह से महत्वपूर्ण होता है। बच्चों के लिए काम की कोई कमी नहीं होती। मारपीट में बीच-बचाव

करना, कंचों की लेन-देन, गप्पबाज़ी और एक दूसरे को चिढ़ाना वगैरह-वगैरह। मोहम्मद और करीम टेबिल पर शरारतन अपने नाम लिखने की कोशिश कर रहे थे कि अचानक कक्षा में शिक्षक का प्रवेश हुआ।

"सलाम वालेकुम सर" , सभी छात्र खड़े हो गए।

"वालेकुम सलाम",सर ने अपनी कुर्सी पर बैठते हुए कहा। बैठने से पहले उन्होंने अपना कोट खूंटी पर टांगा और ब्लेकबोर्ड पर आज की तारीख लिखी। आज ठंड कुछ अधिक थी। ईरान के इस इलाके में जाड़े के मौसम में कड़ाके की सर्दी होती है। तारीख लिखकर सर कक्षा से मुखातिब हुए, "कक्षा में इतना शोरगुल क्यों हो रहा था? मैंने तुम लोगों से कितनी दफा कहा है कि यदि मुझे कक्षा में आने में देरी हो जाए तब भी तुम लोगों को शांति बनाए रखना चाहिए। ए वाज़िद. . . . कहां ध्यान है तुम्हारा? क्या मैं ये सब बातें दीवार से कर रहा हूं?"

इस रोबदार शुरुआत के साथ शिक्षक ने कलम निकालकर होमवर्क जांचना शुरू किया। यह कक्षा का बंधा हुआ नियम था कि शिक्षक के कक्षा में आते ही सबसे पहले सभी छात्र अपने होमवर्क की कॉपियां बाहर निकालें। यह कोई सुखद बात नहीं थी कि दिन का आगाज़ होमवर्क के साथ हो, लेकिन नियम तो आखिर नियम ही होता है।

कक्षा की पहली कतार से शिक्षक ने होमवर्क देखना शुरू किया। उनके पास आने की गति से करीम कुछ-कुछ विचलित हो रहा था। मोहम्मद ने उसके चेहरे के उतार-चढ़ाव भांपते हुए कहा, "करीम तुमने अपना होमवर्क कर लिया है न?"

करीम मोहम्मद का आत्मीय मित्र था। वे दोनों कक्षा में साथ -साथ बैठते थे और स्कूल में रहते भी साथ-साथ थे। लेकिन करीम गरीब था और मोहम्मद के घर के हालात कुछ बेहतर थे।

"होमवर्क तो कर लिया है लेकिन कागज़ पर करके लाया हूं; कॉपी में नहीं। मेरी कॉपी मुझे मिल नहीं रही थी।" करीम की आवाज़ कांप रही थी। यह सचमुच ठीक बात नहीं थी क्योंकि पिछले हफ्ते ही सर ने करीम को खुले कागज़ पर होमवर्क करके लाने के कारण सज़ा दी थी। और ऐसी बातें उन्हें खूब याद रहती थीं।

"तुम्हीं कहो, मैं क्या करूं; अब तो मेरी खैर नहीं।" करीम ने जैसे खुद से ही कहा। उसकी आंखें डबडबा आई थीं, "काश मैं कक्षा से गायब हो सकता।" करीम के ज़ेहन में अजीब से ख्याल आने लगे। इस बीच होमवर्क जांचते हुए शिक्षक उस तक पहुंच गए।

"दिखाओ करीम, कहां है तुम्हारा होमवर्क।" करीम के पांव थर-थर कांप रहे थे। वह डरता हुआ खड़ा हो गया। उसने तीन-चार कागज़ शिक्षक की ओर बढ़ाए।

"ये क्या? यही तुम्हारा होमवर्क है? खुले कागज़ पर?" सर ने कागज़ को हवा में लहराते हुए कहा "मैंने कितनी बार कहा है ऐसे कागज़ों पर होमवर्क नहीं चलेगा। होमवर्क कॉपी में ही करना चाहिए, बताया है कि नहीं?"

शिक्षक ने एक निगाह विद्यार्थियों पर डाली, "मैं तुम लोगों से सैंकड़ों दफा कह चुका हूं, होमवर्क हमेशा कॉपी में ही होना चाहिए। इसका खास कारण है। कॉपी में लिखने से तुम्हें अपनी गलती समझ में आती है और साल भर तुम क्या सीखते हो इसकी तुम्हें जानकारी रहती है।" उनका गुस्सा सातवें आसमान पर पहुंच चुका था।

"मैं तुमसे फिजूल में ये सब नहीं कहता और न ही तुम्हें बेवकूफ समझकर कहता हूं।" उनका मुंह गुस्से से तमतमाया हुआ था। कक्षा में किसी की कुछ भी कहने की हिम्मत नहीं हो रही थी। ऐसे समय चुप रहने में ही खैर थी। शिक्षक फिर करीम से मुखातिब हुए, "मैं तुम्हें आखिरी चेतावनी दे रहा हूं, अगर आइंदा खुले कागज़ पर होमवर्क करके लाओगे तो स्कूल से निकाल दिए जाओगे।"

शिक्षक ने कागज़ के टुकड़े -टुकड़े कर दिए और आगे बढ़ गए। करीम डेस्क पर झुककर सिसकियां लेकर रोने लगा। अपनी कमीज़ की बांहों से आंसू पोंछते हुए वह बुदबुदाया, "अब ऐसी गलती नहीं होगी।"

शिक्षक के ऐसे व्यवहार से कक्षा में सन्नाटा खिंच जाता था। करीम को सहज करने के लिए मोहम्मद को काफी कोशिशें करनी पड़ी। तब कहीं जाकर उसके चेहरे पर हंसी आई।

शाम चार बजे स्कूल की छुट्टी हुई। जाड़े के दिनों में स्कूल जल्दी छूट जाता था क्योंकि बहुत से छात्र दूर-दराज़ के गांवों से आते थे। कुछ लड़के तो सात-आठ किलोमीटर दूर से आते थे और उनके घर पहुंचने तक अंधेरा घिर आता था।

करीम और मोहम्मद स्कूल से देरी से निकलते थे क्योंकि वे दोनों अलग-अलग गांव में रहते थे और उन्हें साथ-साथ खेलने का मौका केवल स्कूल में ही मिलता था। ज़्यादातर वे स्कूल के मैदान में कंचों का खेल खेलते थे। गर्मी के दिनों में छोटे तालाब में तैरना उनका खास शगल था।

अंधेरा धीरे-धीरे उतर रहा था। कल फिर मिलने का वादा करके दोनों ने एक दूसरे से विदा ली। मोहम्मद का गांव स्कूल के नज़दीक ही था।

मोहम्मद घर भर का लाड़ला था।

घर पहुंचने पर वह घरेलू काम में व्यस्त हो जाता था।

'मोहम्मद दूध ले आओ', 'मोहम्मद चाय का कप दादी को दे आओ', 'मोहम्मद यहां धींगा-मस्ती मत करो', 'मोहम्मद छोटे भाई को संभालो', 'मोहम्मद जाओ डबल रोटी ले आओ'। घर में हर काम के लिए उसे ही याद किया जाता था। इसलिए मोहम्मद को घर से अधिक स्कूल पसंद था।

उसने जब घर में प्रवेश किया तो अम्मी रस्सी पर कपड़े फैला रही थी। ढलती शाम के साथ दिन भर के काम की थकान उनके चेहरे पर उतर आई थी। कोई कुछ काम न बता पाए इसलिए मोहम्मद गुपचुप दरवाज़े से भीतर गया, फिर दूध पीकर पढ़ने के लिए बैठ गया। बस्ता निकालकर उसने पहले होमवर्क की कॉपी निकाली और गणित हल करने लगा। जब वह लिख रहा था उसे संदेह हुआ कि कहीं कुछ गड़बड़ है। बस्ते को जब उसने खंगाला तो उसे होमवर्क की एक और कॉपी दिखाई दी। एकाएक उसकी समझ में आया कि भूल से करीम की कॉपी उसके बस्ते में आ गई है। करीम और मोहम्मद की कॉपी बिल्कुल एक जैसी थी, क्योंकि दोनों ने एक साथ, एक ही दुकान से कॉपी खरीदी थी। मोहम्मद ने सोचा कि मेरी कॉपी भी मेरे पास है और करीम की कॉपी भी मेरे पास है इसका मतलब करीम के पास उसकी कॉपी नहीं है। सुबह स्कूल में घटी घटना मोहम्मद को याद आने लगी। अगर करीम के पास होमवर्क की कॉपी नहीं होगी तो कल क्या होगा........ ? किसी भी तरह करीम तक उसकी कॉपी पहुंचनी ही चाहिए, नहीं तो उस बेचारे को स्कूल से निकाल दिया जाएगा। उसके मन में अज्ञात भय की लकीरें उभरने लगीं। वह तुरंत अम्मी के पास गया।

"देखो अम्मी, मैं गलती से ...." मोहम्मद की बात पूरी होने के पहले ही अम्मी बोली, "मुझे सताओ मत, एक तो कामकाज से मैं वैसे भी थक गई हूं।" मोहम्मद ने फिर कहा, "अम्मी मेरी बात तो सुनो। भूल से करीम की कॉपी मेरे पास आ गई है अगर मैंने उसे लौटाई नहीं तो कल उसका नाम स्कूल से काट दिया जाएगा।"

"क्यों दिमाग खा रहे हो। कहीं

जाना नहीं। अच्छा, एक काम करो। पढ़ाई वगैरह बाद में करना, पहले पैसे लेकर जाओ, रात के लिए दो पाव लेकर आना।"

अम्मी मोहम्मद की बात को नज़रअंदाज़ कर रही थी। मोहम्मद ने पैसे लेकर जेब में डाल लिए और जूते पहनकर वह घर से बाहर निकला। तभी उसे एक उपाय सूझा। पाव वाले की दुकान घर से दस मिनट की दूरी पर थी, यदि दौड़ते हुए पास का टीला पार कर करीम के गांव जाए तो समय पर वह पाव लेकर घर भी आ जाएगा और करीम को कॉपी भी दे सकेगा। सभी सवालों का एक ही जवाब था – करीम की कॉपी किसी भी तरह करीम तक पहुंच जाए, बस।

मोहम्मद गांव की दिशा में दौड़ने लगा। तेज़ी से दौड़ते हुए उसने टीला पार किया, उसके बाद छोटे नाले को पार करता हुआ वह करीम के गांव पहुंचा। गांव में जो पहला आदमी उसे दिखाई दिया उसी से उसने पूछा, "चाचा, क्या करीम का घर आपको पता है?"

"किस करीम से मिलना है तुम्हें?", बूढ़े आदमी ने पूछा।

"करीम मेरा खास दोस्त है, वो मेरे स्कूल में पढ़ता है। जानते हैं न आप उस टीले के पार वाला स्कूल?" मोहम्मद ने बताया।

"अच्छा-अच्छा वो करीम? मैं अच्छी तरह जानता हूं उसके अब्बू को। उसके घर जाने के लिए पहले सीधे जाना होगा, फिर एक कुएं के पास तुम पहुंचोगे। वहां किसी से भी पूछ लेना अली का घर कहां है।"

बूढ़े चचाजान की बात पूरी भी नहीं हुई थी कि मोहम्मद दौड़ता हुआ आगे बढ़ा। उसे बात करने की ज़रा भी फुर्सत नहीं थी। धीरे-धीरे हल्का अंधेरा घिरने लगा था।

मोहम्मद जब कुएं के नज़दीक पहुंचा, वहां कुछ औरतें पानी भर रही थीं, कुछ बातें कर रही थीं और कुछ कपड़े धो रही थीं। मोहम्मद ने उनसे कहा, "क्या आप जानती हैं अली का घर कौन-सा है?" औरतें आश्चर्य से इस छोटे बच्चे को देखने लगीं। "अली चाचा का लड़का करीम मेरा खास दोस्त है। मुझे ये कॉपी उसे लौटानी है।" मोहम्मद ने उन औरतों

को समझाने की कोशिश की।

औरतों ने उसे अली का घर दिखा दिया। घर रास्ते की बगल में ही था। मोहम्मद छलांग भरता हुआ घर की दहलीज़ पर पहुंचा। उसने दरवाज़ा खटखटाया। दरवाज़ा एक बुढ़िया ने खोला। मोहम्मद ने उनसे पूछा, "करीम यहीं रहता है न? मुझे उसकी कॉपी वापस करनी है।"

बूढ़ी दादीमां ने करीम को आवाज़ दी। आवाज़ सुनकर जो करीम बाहर आया वह दूसरा ही करीम था। यह करीम उम्र में बड़ा था और मोहम्मद के स्कूल में भी नहीं पढ़ता था। मोहम्मद ने उससे पूछा, "तुम मेरे मित्र करीम को जानते हो? मुझे उसकी ये कॉपी लौटानी है।" उस लड़के ने कहा, "किस करीम से मिलना है तुम्हें? इस गांव में बहुत से करीम हैं।"

मोहम्मद के पास ज़रा भी समय नहीं था कि वह सारी बात उसे समझाकर बताता। वह दूसरे घर की तरफ बढ़ा। बहुत से घरों से पता करने के बावजूद उसे करीम का घर नहीं मिला। वह खूब थक चुका था, हताश हो चुका था। घर-घर घूमने से उसके पैर भी दर्द करने लगे थे। एक चौराहे पर पहुंचकर अचानक उसे ख्याल आया कि वह करीम के गांव में लगभग एक घंटे से है। अंधेरा भी हो चुका था।

मोहम्मद के चेहरे का रंग उड़ चुका था। वह सोचने लगा, "इस अंधेरे में मैं अपने घर कैसे जाऊंगा।" वह कभी भी इतनी देर तक अपने घर से बाहर नहीं रहा था।

वह अपने गांव की दिशा में दौड़ने लगा। जब वह टीले पर चढ़ रहा था तब उसे अचानक ध्यान आया कि लोग कहते हैं कि इस टीले पर भूत-प्रेत रहते हैं। जैसे-तैसे टीले को पार करता हुआ, वह अपने गांव पहुंचा। हांफता हुआ वह पाव की दुकान पर पहुंचा लेकिन दुकान कब की बंद हो चुकी थी।

"अब घर में मेरी खैर नहीं। अब्बाजान पिटाई किए बगैर नहीं छोड़ेंगे।" मोहम्मद सोचने लगा। बहुत संभलकर और बचते हुए वह घर में घुसा।

सामने के कमरे में अम्मी और अब्बा सिर पर हाथ रख चिंतामग्न बैठे थे।

अब्बा रेडियो पर रात का समाचार सुन रहे थे। उन्होंने तैश में मोहम्मद की तरफ देखा और रेडियो बंद करके दूसरे कमरे में चले गए। मोहम्मद ने बहुत धीरज से कहा, "अम्मी मैं होमवर्क की कॉपी देने करीम के गांव चला गया था। लेकिन वो मुझे नहीं मिला।"

अम्मी बोली, "अब मुझसे कुछ न कह कमबख्त। तेरे कारण बिल्कुल जान में जान नहीं थी। जा ऊपर जाकर खाना खा ले।"

अम्मी ने उसे अपने पास नहीं बिठाया, टीला पार करते हुए लगे डर के बारे में कुछ भी नहीं पूछा। अम्मी के इस उपेक्षापूर्ण रवैये से मोहम्मद की आंखें छलछला आईं। जीना चढ़कर वह ऊपर के कमरे में पहुंचा।

"मुझे खाना नहीं खाना है", चीखते हुए उसने कहा।

मोहम्मद ने बस्ता निकाला और लालटेन की रोशनी में अपना होमवर्क करने लगा। पास रखी थाली की तरफ उसने देखा तक नहीं। देर रात तक वह पढ़ाई करता रहा।

पढ़ाई करते-करते ही जलती हुई लालटेन के पास उसे कब नींद आई पता ही नहीं चला।

स्कूल का अगला दिन, और दिनों की तरह ही शुरू हुआ। कक्षा में आज

भी उतना ही शोरगुल था कि आप अपनी आवाज़ तक नहीं सुन सकते थे। करीम का मन आज अस्वस्थ था। उसका दूसरों की तरफ ज़रा भी ध्यान नहीं था। शिक्षक जैसे ही कक्षा में आए, शोरगुल थम गया।

"सलाम वालेकुम सर।"

"वालेकुम सलाम" शिक्षक ने अपना कोट निकालकर खूंटी पर टांगा। ब्लेकबोर्ड पर तारीख लिखी और अपनी कुर्सी की तरफ बढ़े। करीम के बगल की जगह आज खाली थी। मोहम्मद आज स्कूल नहीं आया था। वह पढ़ाकू छात्र था और आम तौर पर कभी भी कक्षा से गैरहाज़िर नहीं होता था।

"बच्चो, खोलो अपनी होमवर्क की कॉपी", शिक्षक ने कमीज़ की बांहें मोड़ते हुए कहा। फिर कलम निकालकर वे होमवर्क जांचने लगे। आज जांच पीछे की बेंच से शुरू हुई थी। करीम परेशान हो रहा था। वह डेस्क की दराज़ में इधर-उधर अपनी कॉपी खोजने लगा। उसकी आंखें भर आई थीं। उसे जैसे कुछ भी दिख नहीं रहा था। सर ने क्या कहा, इस ओर उसका ज़रा भी ध्यान नहीं था।

"क्या करूं मैं आज? आज मुझे कोई बचा नहीं सकता।" करीम होठों ही होठों में बुदबुदाया, "पिताजी को यह बताने में कितना बुरा लगेगा कि मुझे स्कूल से निकाल दिया गया है।" उसके हाथ-पांव कांप रहे थे और मुंह से बोल नहीं फूट रहे थे। पिछली बेंच से जांच करते हुए शिक्षक करीम के पास तक पहुंचे।

"सर, क्या मैं अंदर आ सकता हूं?" दरवाज़े पर खड़े मोहम्मद ने शिक्षक से अनुमति मांगी।

"मोहम्मद, आज देर क्यों हुई? कितनी बार तुम्हें समझाया कि देर होने पर सज़ा मिलेगी, कक्षा के बाहर पूरे दिन खड़े होने की। तुम लड़के आखिर कब अनुशासित होगे।"

मोहम्मद जिस-तिस तरह से अपना बस्ता संभालते हुए बोला, "सर, रात देर तक जागने से सुबह जल्दी नींद नहीं खुली। पड़ोस के गांव गया था।"

शिक्षक ने मोहम्मद की बात अनसुनी करते हुए कहा, "मुझसे बहस मत करो। आज मैं तुम्हें छोड़ देता हूं। लेकिन फिर कभी देर हुई तो याद रखना।"

शिक्षक का वाक्य समाप्त होने से पहले ही मोहम्मद अपनी डेस्क की तरफ लपका। बस्ता खोलकर उसने फुर्ती दिखाते हुए अपनी कॉपी निकाली और करीम की कॉपी चुपचाप उसकी तरफ बढ़ा दी।

"करीम दिखाओ अपना होमवर्क", करीम की कॉपी हाथ में लेते हुए शिक्षक ने कहा। करीम बेचैन हो उठा और अपना चेहरा हथेलियों में छुपाकर

सुबकने लगा। शिक्षक उसकी कॉपी देखने लगे।

"शाबास करीम, आज तुमने बहुत अच्छा होमवर्क किया है।" शिक्षक ने कहते हुए करीम को कॉपी लौटा दी।

करीम कुछ समझ नहीं पाया। मोहम्मद मुस्करा रहा था। वह करीम के कान में फुसफुसाया, "घबराओ नहीं करीम, मैं अपने साथ तुम्हारा होमवर्क भी करके ले आया था।"

प्रदीप गोठोस्कर: खगोलशास्त्री। पुणे स्थित टाटा मूलभूत शोध संस्थान के 'नेशनल सेंटर फॉर रेडियो एस्ट्रोनोमी' में काम कर रहे हैं। मराठी संदर्भ के संपादन मंडल के सदस्य।

हिन्दी अनुवाद एवं चित्र: राजेन्द्र गायकवाड़। आकाशवाणी बैतूल में सेवारत। शौकिया अनुवादक एवं चित्रकार हैं।

यह कहानी अब्बास कियारोस्टॉमी की एक ईरानी फिल्म पर आधारित है। कथा रूपांतर प्रदीप गोठोस्कर। मराठी संदर्भ के पहले अंक सितंबर-अक्टूबर 1999 से साभार।

संदर्भ सजि

हर जिल्द में हैं:

भौतिकी, रसायन, प्राणिशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, प्राणी व्यवहार, सूक्ष्मजैविकी, गणित, इतिहास, भूगोल–भूविज्ञान, वैज्ञानिकों की जीवनियां, पढ़ाने के तरीके, बच्चों के साथ अनुभव, प्रयोग–मॉडल एवं गतिविधियां, सर्वे रिपोर्ट, कहानियां, पहेलियां और सवालीराम के सवाल–जवाब

संदर्भ अंक 1-6, 7-12, 13-18 और 19-25 के सजिल्द संस्करण उपलब्ध हैं। इनके साथ है प्रकाशित अंकों का विषयवार इंडेक्स।

प्रत्येक का डाक–खर्च सहित मूल्य 65 रु.।

राशि डिमांड ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से भेजें। ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं। अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें।

एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद, म. प्र. 461001 फोन: 07574 – 53518

एकलव्य, ई-1/25, अरेरा कॉलोनी भोपाल -462016 ई-मेल: eklavyamp@vsnl.com

जीवन चक्र ऐसा भी

दीपावली के दिन घर के दरवाज़े पर आम के पत्तों से तोरण बना रहा था कि अचानक एक पत्ती पर नज़र पड़ी। यह पत्ती कुछ ज़्यादा ही फूली-फूली दिख रही थी। मैंने उसे तोड़कर गौर से देखा। ऐसा लगा जैसे पत्ती का फलक यानी बीच का हिस्सा कुछ फूला हुआ है। मैंने सोचा उसके अंदर शायद कोई कीड़ा है इसीलिए ऐसे फूल गई है।

फिर पत्ती को बीच से मोड़कर देखा तो आश्चर्य का ठिकाना न रहा। ऐसा लगा मानो पत्ती की मध्य शिरा ही ऊपर उठ गई। पर यह क्या! मध्य शिरा के साथ कुछ सहायक शिराएं और धारियां भी ऊपर को आ गईं। ओफ! ये तो इल्ली (लार्वा) है, बिल्कुल पत्ती के रंग-रूप जैसी।

इल्ली के शरीर पर वैसी ही धारियां थीं जैसी पत्ती की मध्य शिरा एवं सहायक शिराएं होती हैं। मैंने इल्ली को तिनके से पत्ती के किनारे की ओर खिसकाया लेकिन इल्ली ने घूम-फिरकर मध्य शिरा को खोज लिया और फिर से मध्य शिरा की लाइन में सीधी होकर पहले जैसे पत्ती से चिपक गई। मालूम हो जाने के बावजूद फासले से तो पहचानना मुश्किल था।

इल्ली काफी विचित्र थी, इसलिए उसके फोटो खिंचवाए और उसे पालने का तय किया। लगे हाथ सोचा, इसके जीवन-चक्र का अध्ययन भी कर लिया जाए।

एक कांच के जार में पत्ती और इल्ली को रख दिया। जैसे ही रात शुरू हुई इल्ली ने पत्ती को कुटुर-कुटुर कर खाना शुरू किया और रात भर में आम की आधी पत्ती हज़म कर ली। अर्थात यह इल्ली निशाचर निकली। दूसरे दिन उसे आम की ताज़ी पत्ती दी। उसने बड़ी फुर्ती से पत्ती को कुबूल किया और पहले की तरह मध्यशिरा की सीध में छिप गई।

दो-तीन दिन तक पत्तियां खाने के बाद इल्ली सुस्त पड़ने लगी। अगले दिन देखा तो इल्ली की रोएंदार खोल बाजू में पड़ी है और जार में एक फीके हरे रंग की शंखी (प्यूपा) मौजूद है। इल्ली शंखी में तब्दील हो गई थी। शंखी के बीच वाले हिस्से में एक सुनहरी चमकदार धारी ऐसी लग रही थी मानो किसी ने चिपका दी हो, तकरीबन 10-12 दिन में शंखी से एक काली तितली निकल आई – एकदम सामान्य-सी तितली!

परिवार और पड़ोसियों ने इस जीवन-चक्र और कायांतरण की अवस्थाओं को नज़दीक से देखा। मुझे एकबार फिर समझ में आया कि प्रकृति में जीवों की विविधता और उसके अध्ययन का आनंद ही कुछ अनोखा है।

आलेख एवं फोटो – उमेश चौहान। हरदा ज़िले की टिमरनी तहसील में विज्ञान पढ़ाते हैं।

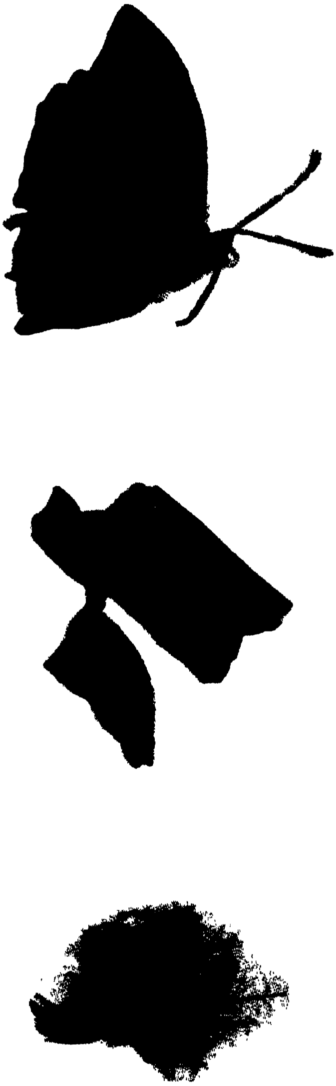

बहुत से जीव जंतु शिकारी से बच निकलने के लिए अपने आप को आसपास के वातावरण में गुम कर लेते हैं। ऐसी ही एक इल्ली का फोटो जो पत्ते पर बैठकर अपने आप को इस तरह घुमा लेती है कि उसके शरीर पर बनी धारियां पत्ते की मध्य शिरा और अन्य शिराओं के जाल की सीध में आ जाएं।

बाईं और के फोटो में इस इल्ली (लार्वा) के कायांतरण के परिदृश्य चित्रित किए गए हैं। इल्ली पत्ते खाकर मोटी-तगड़ी हो जाती है और फिर उसमें से जब शंखी (प्यूपा) बनने की शुरुआत होती है तो वह अपना खोल छोड़ देती है। दूसरे फोटो में पत्ते से झूलती हुई शंखी दिख रही है। और अंत में, इस शंखी में से निकलती है एक मटमैले रंग की तितली।

समस्त फोटो समान अनुपात के हैं – इतनी बड़ी इल्ली से बनता है छोटा-सा प्यूपा और फिर प्यूपा में से उससे कहीं ज्यादा बड़ी तितली निकलती है, परन्तु शुरुआती इल्ली जितनी बड़ी नहीं।